हंस

वार्षिक पत्रिका 2019

हंसराज कॉलेज

— दिल्ली विश्वविद्यालय —

Mahatma Hansraj

(1864-1938)

The college was founded to preserve the memory of Mahatma Hansraj, acknowledged as the founding father of the D.A.V. movement in undivided India. Frail in body but heroic in sprit, Mahatmaji was selflessly dedicated to the course of education. He started his career as the Honorary Founder Headmaster of D.A.V. School, Lahore, in 1886 and over the next 50 years went on to shape the destiny of the D.A.V movement in India.

प्रकाशन समिति

डॉ.अमित सहगल
डॉ.शर्मा भानू भूपेन्द्र
डॉ. प्राची देवरी
सुश्री रुचि शर्मा
डॉ. ब्रह्म प्रकाश
श्री अजीत कुमार
डॉ. विजय कुमार मिश्र
श्री महेंद्र प्रजापति
डॉ. मुकुन्द माधव मिश्र
डॉ. फ़रहत जहाँ

समन्वयक

श्री सुशील कुमार गुप्ता
(कार्यवाहक प्रशासनिक अधिकारी)

संपादक मंडल

(बाएँ से दाएँ) डॉ. मुकुन्द माधव मिश्रा, श्री सुशील गुप्ता, श्री महेंद्र प्रजापति, डॉ. विजय कुमार मिश्र, डॉ. अमित सहगल, डॉ. रमा (प्राचार्या), डॉ. शर्मा भानू भूपेंद्र, श्री अजीत कुमार, डॉ. ब्रह्म प्रकाश, डॉ. प्राची देवरी, डॉ. फरहत जहाँ
सुश्री रुचि शर्मा।

(बाएँ से दाएँ) नीतेश यादव, मधुमाला, देवव्रत, राहुल

संदेश

डॉ. रमा
प्राचार्या

'हंस' कालेज की बहुभाषी पत्रिका है। जिसमें हिंदी, अंग्रेजी और संस्कृत भाषा की रचनाएं प्रकाशित की जाती हैं। अब तक की यात्रा में हंस निरंतर प्रगति ही कर रहा है। हंस कालेज के युवा लेखकों के साथ ही रचनात्मक लेखन में रूचि रखने वाले प्राध्यापकों के लिए भी बड़ा मंच है। हंस की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ छात्र एवं प्राध्यापक दोनों को एक साथ प्रकाशित कर लेखन के स्तर पर समान मौका दिया जाता है। इससे नए लिखने वालों को एक प्लेटफार्म तो मिलता ही है साथ ही निरंतर लिखते रहने का हौसला भी मिलता है। कालेज के दिनों में हंस में प्रकाशित होने वाले विद्यार्थी वर्तमान में मीडिया, साहित्य, सिनेमा जैसे कला क्षेत्रों में अपना नाम रौशन कर रहे हैं। हंस के माध्यम से युवा लेखकों की लेखन क्षमता को निखारना भी हमारा उद्देश्य होता है।

परंपरागत स्वरुप की गरिमा को बनाए रखते हुए कुछ नए भावबोध के साथ इस वर्ष का हंस आपके सामने है। निश्चय ही इसमें प्रकाशित होने वाले रचनाकार आगे चलकर न केवल साहित्य, समाज व कला के क्षेत्र में अपना मुकाम हासिल करेंगे बल्कि भविष्य में अपनी इन रचनाओं को देखकर कालेज के दिनों को बार-बार याद भी करेंगे। इसके संपादन मंडल को मैं हृदय से बधाई देती हूँ। इसमें प्रकाशित रचनाकारों को मेरी बधाई व शुभकामनाएँ। अंत में मैं संपादन मंडल के सदस्यों और रचनाकारों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

Editorial

Dr. Amit Sehgal

Convener, Editorial Board

Over the years, Hans, our college magazine, has served as a platform for the students, faculty and staff of Hansraj College to showcase their immense literary talent and express their thoughts, feelings and insights about their perspective towards the world. It has provided a workbench to students, faculty and staff to interconnect with each other beyond the confines of the classroom and regular curriculum.

This editorial board has tried to present to you the best talent that Hansraj has to offer in diverse fields and diverse creative forms such as poetry, prose, photography and painting. The multilingual nature of the magazine is a testament to the diversity of the student and teaching community of Hansraj College. Collecting inputs, scrutinizing through the wide array of received contributions and finally designing and printing the magazine has been a challenging experience.

Publishing this new issue of Hans would not have been possible without the sincere and breathtaking efforts of my editorial team and the college staff. I would like to express immense gratitude to students, colleagues and associates who have contributed to the different stages of putting this magazine together. My special thanks to the students involved in editoral team: Madhumala, Rahul, Devvrat Arya, Anshuman Yadav, Smriti Verma, Srishti Gupta, Ujjwal Parashar, Areeb Ahmad, Shipra, Soumya Vats, Nitesh Yadav You all did a great job! I would also like to thank the students of Kalakriti, the Fine arts society, and Pixels, the Photography society, who have contributed generously to embellish the magazine with sketches, paintings and images.

Hope you will enjoy reading this issue which we have put together with great effort and dedication.

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

हिंदी

संपादक मंडल

- डॉ. विजय कुमार मिश्र
- श्री महेन्द्र प्रजापति

छात्र-संपादक

- नीतेश यादव

विषयानुक्रमणिका

1 एक योद्धा हो तुम। | 8

2 धूपिया भोर | 8

3 ईंट | 8

4 तुम्हारी सुगंध | 9

5 हाँ मैं कविता लिखती हूँ! | 9

6 मेरी रसोई | 10

7 रुख मोड़ती है जिंदगी |10

8 मैं कवि तो नहीं हूँ | 11

9 थोड़ी मस्ती थोड़ा सा ईमान | 11

10 मेरी आशाएँ | 11

11 तुझे भी इश्क हो | 12

12 कभी-कभी मैं सोचता हूँ | 12

13 नफरत करता हूँ मैं खुद से | 13

14 मैं निकल चुका हूँ | 13

15 वादों से भरपूर अधूरे रिश्ते | 14

16 आज कल चारों तरफ होड़ लगी हैं | 14

17 वजह तुम हो | 15

18 बचपन | 15

19 क्या लिखूं | 15-16

20 मैं क्यूं कहूँ | 16

21 तुम भी मारे जाओगे | 17

22 क्या हो कि अगर | 17-18

23 समाज का अंत | 18

24 वो लोग मर चुके है | 18

25 सच्चाई आजकल... | 18-19

26 तलाश | 19-20

27 कफन की सार्थकता | 20-22

28 डिबिया | 23-25

एक योद्धा हो तुम।

– **रहीश कुमार**
विभाग–बी. ए. प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

एक योद्धा हो तुम।
हार के आगे जग हंसता हैं,
जीत के आगे जग झुकता हैं।
जिसने स्व को पाया, उसने संसार को पाया,
जिसने खुद को पाया,उसने खुदा को पाया।
हार के लिए क्यों रोते हो,
अपनी जीत के लिए क्यों सोते हो।
तानों के शोर में बहरा बन जा,
और पहन ले जीत का सहरा।
करोड़ों को जीतकर इस जग में आया हूँ
एक योद्धा को पाया है इस संसार ने जो
हर राह आसान करने आया है।

■■■

धूपिया भोर

– **नीतेश प्रज्ञान**
बी.ए. (विशेष) हिंदी, तृतीय वर्ष

श्वेत चांदनी के आँचल में
तारों की बस्ती सजती
'दिवाकर' के आगमन में
खामोशी पहरा देती
निशीथ विराम लिए तन मन
खामोशी का शिकार हुआ
देवालय के बाहर हाय!
पद दलित उसका मान हुआ
गूढ़ चांदनी में मुख उसका
बुझा हुआ सा हाँफ रहा
धरती के आंचल पर अविचल
दीप पुतली का डोल रहा
'पनियारी आंखों' के तहखाने में
बांधा उफान बन टूट रहा
माँ की 'धूपिया भोर' का तारा
'मौन भूख' में टूट रहा
नीरवता सी शून्य वेदना
चुभती सजल नेत्रें में
आकर विभेद आँचल का मिटा दे
ओ दिवाकर समतल में..

■■■

ईंट

– **नीतेश प्रज्ञान**
बी.ए. (विशेष हिंदी), तृतीय वर्ष

दृढ़, सख्त पर अटूट नहीं
तरलता सोखना गुण है उसका,
जो कभी अपने पूर्व नित्यरूप में
द्रव्य का संपर्क पाकर
गल जाया करती थी।
अब उन घरौंदों
को काली नजर लग गयी है,
ताप सहने के बाद अक्सर कठोर लाल
हो जाती है ईंट,
जल को सींच कर कठोर हो जाती है
और कई दशकों तक खड़ी रहती है इमारत
उसके छिद्रों के तरल स्रोत मृत हो जाते हैं
'कुम्हार' भी कुछ नहीं कर पाता
जैसे भीतर ही भीतर कोई उसको नोंच रहा हो,
चीत्कार विह्वल होने लगती है
'छेनी' और 'वसूली' के प्रहार से
उसकी चीत्कार फूट पड़ती है
जैसे किसी फोड़े से मवाद बाहर निकल उठा हो
प्रहार और बिखराव नित्यरूप को
धारण करने की आवश्यक क्रिया है
मनुष्य में ये बोध अब
अपेक्षित जान पड़ता है....

■■■

तुम्हारी सुगंध

- **प्रेमराज कौशिक**
बी. ए. हिंदी ऑनर्स, (द्वितीय वर्ष)

रूक कर ठहरा क्षण भर वो
फिर चल पडा
और खो गया अपनी ही दुनिया में ।
मैं भी
पैरों को घसीटते हुए
लौट आया
घर को
अपनी दुनिया में ।

जहाँ एक छोटे से कमरे में
कुछ सामान है
रोजमर्रा की जरूरतों का...
मेज पर जलती
मध्यम सी रोशनी
कुछेक बिखरी किताबें...
और हर एक कोने में बसी
तुम्हारी सुगंध ।।

■■■

हाँ मैं कविता लिखती हूँ!

- **विदिशा गुप्ता**
बी.ए. हिंदी (विशेष) तृतीय वर्ष

हाँ मैं लिखती हूँ,
सही सुना तुमने ,
मैं लिखती हूँ !
हाँ मैं कविता लिखती हूँ !!
लिखती हूँ उन जज्बातों को
जो जब्त है मेरे अंदर
हाँ मैं लिखती हूँ
सही सुना तुमने
मैं लिखती हूँ
हां मैं कविता लिखती हूँ !!

तन्हाई के आलम में
मन की किताब खोल,
अंतर्मन की पीड़ा को
शब्दों में घोल
हाँ मैं लिखती हूँ
सही सुना तुमने
मैं लिखती हूँ

हां मैं कविता लिखती हूँ !!

उन मुलाकातों को
उन बीती हुई बातों को,
जो अंकित है
मेरे हृदयपटल पर
हाँ मैं लिखती हूँ
सही सुना तुमने
मैं लिखती हूँ
हां मैं कविता लिखती हूँ !!

अपने कड़वे अनुभवों को
सरसता में मढ़ती हूँ,
फिर कहीं जाकर
कविता गढ़ती हूँ ,
हाँ मैं लिखती हूँ
सही सुना तुमने
मैं लिखती हूँ
हां मैं कविता लिखती हूँ !!

■■■

मेरी रसोई

– **विदिशा गुप्ता**
बी.ए. हिंदी (विशेष) तृतीय वर्ष

हाँ ये मेरी रसोई है
हाँ ये मेरी सृष्टि है
मैं ही हूँ रचनाकार इसकी
हाँ वो चीनी पत्ती
के डब्बों से लेकर
वो दाल राजमा के
डब्बों तक
सजा के रखे हैं मैंने
इस्तेमाल के अनुसार
हाँ शायद
तुम्हें आदत नहीं
इस व्यवस्था की,
हाँ ! शायद
तुम्हें आदत नहीं
इस व्यवस्था की
हाँ, तुम आओगे
तो जान ही जाओगे
की कौन सा डब्बा
किधर रखा है,
हाँ, ये सब इतना
मुश्किल भी नहीं...
पर क्या तुमने, कभी
कोशिश भी की है
ये सब जानने समझने की??
क्या तुम जानते हो कि
दालों को आगे पीछे
किस आधार पर रखा है मैंने
या क्या तुम जानना भी
चाहते हो कि..
रसोई सिर्फ मेरे
अकेले की नहीं
अपितु हम सबकी है
चलो छोड़ो भी,
हाँ ! मैंने मान लिया
हाँ ये मेरी रसोई है
हाँ ये मेरी सृष्टि है,
मैं ही हूँ रचनाकार इसकी ..।

■■■

रुख मोड़ती है जिंदगी

– **सूरज कुशवाहा**
(बी.एस.सी. इलेक्ट्रॉनिक्स, प्रथम वर्ष हंसराज कॉलेज)

रुख मोड़ती है जिंदगी,जब कोई आती है।
जिंदगी, कलियों की तरह खिलखिलाती है।
सुबह और शाम का पता ही नहीं चलता,
जब अपने होठों से प्यार की बातें छलकाती है।
ना दुनिया का कोई गम, न अंदर कोई द्वेष होता है।
जब उसकी प्यार भरी बातों का रूह में समावेश होता है।
उसका मुझसे रूठ जाना भी जरूरी होता है।
हमारे एक सॉरी के बाद इतराना भी जरूरी होता है।
ये सब उसका गुस्सा, प्यार,
नजरों की नजाकत प्यारी लगती है।
और इनके न होने से जिंदगी गंवारा लगती है।
बस ऐसे ही होती है इन जोड़ियों की कहानी।
इस कलयुग में भी ये नहीं पुरानी।

■■■

मैं कवि तो नहीं हूँ

– रूंपा कयाल

मैं कवि तो नहीं हूँ
बस शब्दों को ही जोड़ती हूँ
कभी प्रेम में डूब जाती हूँ
कभी जिन्दगी में खोती हूँ
कभी भीड़ में शब्द खोजती हूँ
तो कभी अकेले में रोती हूँ
पता नहीं मैं कैसी हूँ
फिर भी जिन्दगी जीती हूँ
कभी खुदके विचार आँकती हूँ
तो कभी उम्मीदें विचारती हूँ
ख्वाबों से तस्वीर बनाना चाहती हूँ
फिर खुद ही उसे तोड़ती हूँ
दिल की बातें लिखती हूँ
मैं खुद ही उसे मिटाती हूँ
न जाने मैं कैसी हूँ
फिर भी कोशिश करती हूँ
मैं कवि तो नहीं हूँ
बस शब्दों को ही जोड़ती हूँ।

■■■

थोड़ी मस्ती थोड़ा सा ईमान

– अंकुर चौधरी

थोड़ी मस्ती थोड़ा सा ईमान बचा पाया हूँ,
ये क्या कम है कि मैं अपनी पहचान बचा पाया हूँ,
मैंने सिर्फ उसूलों के बारे में सोचा भर था,
कितनी मुश्किल से मैं अपनी जान बचा पाया हूँ,
कुछ उम्मीदें, कुछ सपने, कुछ महकी-महकी यादें,
जीने का मैं इतना ही सामान बचा पाया हूँ,
मुझमें शायद थोड़ा-सा आकाश कहीं पर होगा,
जो मैं घर के खिड़की रोशनदान बचा पाया हूँ,
इसकी कीमत क्या समझेंगे ये सब दुनिया वाले,
अपने भीतर मैं जो इक इंसान बचा पाया हूँ.....!!!!!

■■■

मेरी आशाएँ

– अंकुर चौधरी

मेरी आशाएँ
आशा है एक आशा है,
बचपन की मेरी एक आशा है,
आशा है कुछ है कर दिखालाने की,
पत्थर को स्वर्ण बनाने की,
सागर के मोती को लाने की,
आशा है, मेरी आशा है,
कुछ अपनी है, कुछ मां-पापा की करना जिसको पूरी है,
कांटों में चलकर खिलना है,
जुगनू की तरह चमकना है,
धरती को रोज़न करना है,
सबसे परे निकलना है,
आशा है, मेरी आशा है,
आशा हो तो ऐसी हो जिसमें,
निराशा की कभी बात न हो
निराशा में भी आशा हो,
ज्ञान का दीपक जलाने वाली हो,
संसार की कटुता हटाने वाली हो,
आशा है, मेरी आशा है,
कण-कण में स्नेह व्याप्त हो,
हर पल खुशी का रंग प्राप्त हो,
न नफरत हो न युद्ध हो,
बस अनुराग का स्वर विलास हो,
आशा है एक आशा है,
बचपन की मेरी एक आशा है,

■■■

तुझे भी इश्क हो

– रहिश कुमार
बी.ए.प्रोग्राम प्रथम वर्ष

तुझे भी इश्क हो

क्यों आजकल सब खोये रहते हैं,

क्यों लोग नाटक भी सही नहीं करते हैं।

कुछ परिन्दे उड़ते रहते हैं,

लगता है नई नई दौलत मिली है।

किसी से दिल लगा लिया करो,

किसी पे विश्वास कर लिया करो।

किसी से इश्क करलो,

किसी पे समर्पण कर दो,

किसी और पे नहीं तो अपने आप से ही सही।

इस जीवन को यूँ ही ना लुटाया करो,

किसी मोड़ पे खुद को हंसाया भी करो।

जा लगा ले नजरों में इश्क वाला सुरमा,

दुआ देता हूँ तुझे भी इश्क हो,

जो खाली हैं तुझमें वो इश्क हो,

■■■

कभी-कभी मैं सोचता हूँ

– राजदीप चौहान
बी.ए. (विशेष) अंग्रेजी प्रथम वर्ष

कभी-कभी मैं सोचता हूँ

कि भगवान ने शायद सिर्फ इंसानियत बनाई होगी,

इंसानियत के आढ़े हैवानियत हमने बना डाली।

भगवान ने शायद सिर्फ धरती बनाई होगी,

लकीरें खींच कर मुल्क हमने बना डाले।

खुदा ने सिर्फ प्यार बनाया होगा,

कौन किस से कर सकेगा, इसके नियम हमने बना डाले।

भगवान ने शायद सिर्फ इंसान बनाये होंगे,

ब्राह्मण और शूद्र के खांचे हमने बना डाले।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ

कि शायद दूसरे जहां में भगवान भी

अल्लाह से कहते होगें

कि हम तो बस दो रूप हैं एक चीज़ के,

फिर क्या मंदिर और क्या मस्जिद,

हमने तो सिर्फ जगह बनाई थी

इस जगह को लेकर दंगे इंसानों ने करा डाले।

कभी-कभी मैं सोचता हूँ।

■■■

नफरत करता हूँ मैं खुद से

– राजदीप चौहान
बी.ए. (विशेष) अंग्रेजी प्रथम वर्ष

नफरत करता हूँ मैं खुद से
इस खाल से, इस रूप से
शरीर पर पड़ती उस सूरज की धूप से
जो जला देती है इस प्रतिरूप को
और मैं दिखने लगता हूँ
छना छना सा
धुंधला सा
मैं मिटने लगता हूँ
जाहिर हो जाता हूँ
खुद को ही
जिसे नजर अंदाज करना चाहता हूँ
एक सच का गला घोट
खुद को ही उमरदराज़ करना चाहता हूँ
रिस रहा जो मुझसे
टपक रहा है
बूँद बूँद करके
सच
जो उबल रहा है
बिखर रहा है हर सांस जो मुझमें
मुखौटे पिघला रहा है
सच
ओढ़कर धूप
ये किस सफर निकल रहा है

■■■

मैं निकल चुका हूँ

रहिश कुमार
बी.ए.प्रोग्राम प्रथम वर्ष

मैं निकल चुका हूँ
सुबह हो चुकी है,
मैं उठकर बच्चा हो चुका हूँ
कल को भूल गया हूँ, याद तो सिर्फ अनुभव है,
भविष्य की चिंता छोड़ दी, क्योंकि मेरे पास तो आज है।
यह मेरा आज है,
अपनी पंसद की जिन्दगी जी रहा हूँ,
निष्काम अपने कर्तव्य पथ की ओर जा रहा हूँ।
दुनिया कि चिंता छोड़ चुका हूँ,
अपने आप से मिलने निकल चुका हूँ।
मिला जब अपने आप से तो जाना,
क्योंकि भटक रहा था इस मंच पर
अपना अभिनय तो सही से करना चाहिए।
कुछ लोग आते हैं हमसे रिश्ता जोड़ने को
हम हसंकर कहते हैं-तुम निभा नहीं पाओगे
क्योंकि दो लोगों से ही रिश्ता रखा हैं-खुद से और खुदा से
मै भीड़ से अलग दौ़ड़ रहा हूँ,
तो सलाह देने वाले भी कम थोड़े ही होगें।
अगर वो मौकापरस्त है,
तो हम भी हौसला रखने वाले ठहरे।
खुदा समझदार ही होगा,
जब तुम्हे बनाया था,
क्या मांगते हो हर बार उसके दर पर,
काम तो सही से करो, तनख्वाह भी जरूर मिलेगी
इस पृथ्वी की तरह सहनशील बनो,
जो तुम्हारे हर कृत्य को सहन करती है।
नदी की तरह गतिशील बनो,
क्यों हर बार समय का बहाना बना लेते हो।
सोचना जरा..... मुश्किल नहीं हैं।

■■■

वादों से भरपूर अधूरे रिश्ते

– **अनिल कुमार**
हिंदी (विशेष) द्वितीय वर्ष

स्वार्थ मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है। वैसे अगर मोटे तौर पर देखा जाए तो मनुष्य को स्वार्थी होना चाहिए, परन्तु एक निश्चित सीमा तक क्योंकि कभी कभी यही स्वार्थ लोभ की स्थिति में आ जाता है जो बाद में पतन का कारण बनता है। स्वार्थ दो प्रकार का होता है पहला अपने प्रति और दूसरा दूसरे के प्रति। अगर हम अपने प्रति स्वार्थ की बात करें तो जो हम स्वयं से करते हैं तथा दूसरों के प्रति स्वार्थ की बात करें तो जो खुद के लाभ के लिए दूसरे से करवाते हैं ।

इसी कडी में अगर रिश्तों की बात करे तो चाहे वह कोई भी रिश्ता हो सब में कहीं न कहीं स्वार्थ पल रहा है जैसे- दोस्त, भाई- भतीजा , सगे -सम्बन्धी आदि । वैसे रिश्ते बने ही स्वार्थ से हैं। एक तरफ ये भी है कि अगर स्वार्थ को छोड़ दिया जाए तो विकास की प्रक्रिया भी बाधित होती है। वो भी आज के आधुनिक युग में फिर बिना स्वार्थ के किसी भी कार्य पूर्ण नहीं होता है ।

अजीब दासता है इस जिंदगी की कभी रूलाती है कभी हंसाती है और यही से बनती है सम्पूर्ण जीवन की दास्तान। जब हमारा मन वातावरण की सम्पूर्ण क्रियाओं से ऊब जाता है, तब हमें वहां पर अपने आप में एक अजीब सा महसूस होता है और उसमें जो मानसिक वेदना उत्पन्न होती हैं जो मनुष्य को अंदर से झकझोर देती है जिसमें हम कई बार अपना आपा खो बैठते है फिर फैसले लेते लेते नकारात्मकता की उस चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं जो कि हमें दूसरे के सामने नीचा दिखाती है जब वहां से अपने आप को सम्भालने की बात जहन में आती तब तक हम दूसरों से बहुत पीछे हो जाते हैं इस आधुनिक युग में। और फिर उसी रास्ते में चलना होता है जिसमें हम एक बार चल चुके होते है, उस रास्ते में चलने के लिये कुछ सहयोग की जरूरत होती है जिससे हम स्वार्थी बनने के लिए मजबूर होते हैं और फिर हम नए-नए रिश्तों का निर्माण करते हैं ।

अत: स्पष्ट है कि अपना भाग्य अपने निर्णयों से ही निर्धारित होता है।

■■■

आज कल चारों तरफ होड़ लगी हैं

– **महीपाल**
हिंदी विशेष प्रथम वर्ष

आज कल चारों तरफ होड़ लगी हैं
कवि बनने की
लेकिन मैं नहीं चाहता कुछ भी लिखना
क्यूंकि मैं जानता हूं कि दुनिया में
सब कुछ लिखा जा चुका है।
अब मैं ज्यादा से ज्यादा कर
सकता हूं अपनी प्रेमिका के लिए
उपमाओं की फेर बदल
जिनको पढ़कर शायद वो खुश भी हो जाए
लेकिन मुझे ये सब झूठ लगते हैं।
ये सब दिखावा है
क्यूंकि मेरे लिए प्रेम का अर्थ सिर्फ
प्रेमिका की जुल्फों में खो जाना
या उससे उम्र भर का प्यार करने का
वादा करने तक
सीमित नहीं है
मेरे लिए प्यार का मतलब है कि
वो मेरे इस रेगिस्तान से जीवन में
पानी की तरह बने आशा
जो उगा सकती है मेरे अंदर
क्रांति का एक पौधा
जो भले ही बहुत छोटा हो इन
दुखों और बुराइयों के विशाल जंगल के आगे
लेकिन फिर भी वह बनेगा हिम्मत
बहुत सारे अन्य छोटे पौधों की
और एक दिन वो सारे पौधों मिलकर
खत्म कर डालेंगे बुराई और दुखों के
इस जंगल को
और दे सकेंगे दुनिया को एक नई राह
जीवन में।

■■■

वजह तुम हो

- **सचिन दोहरे**
बी.ए. हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

खुदा के रहमों करम की वजह तुम हो
मेरे हर अश्क की दरकार तुम हो
खुदा की नजरों में गिरने की वजह तुम हो
गिर गिर कर फिर से उठने की वजह तुम हो
मायूसी के सागर में डूबते जा रहे थे
फिर जिंदगी जीने की वजह तुम हो
हर लड़की को देखने की वजह तुम हो
उसके हुस्न में सीरत तलाशने की वजह तुम हो
जिस सागर में रूप तुम्हारा दिखे
उस सागर के किनारे पहुंचने की वजह तुम हो

■■■

बचपन

- **सार्थक दूबे**
बी. ए. (हिन्दी विशेष), प्रथम वर्ष

ले रहा है बचपन सिसकियाँ
उस बंद टूटे दरवाजे के पीछे
याद कर रहा है अपने बीते वक्त को
जुटा रहा है कुछ "अनमोल" यादें अपने बीते कल से
अतीत की वो धुंधली परछाई उसकी यादों को रौंद रही है
याद आ रहा है उसे अपना बचपन
वो माँ की गोद में बैठकर जहाँ को देखना
माँ की उन कहानियों में अपने भविष्य को तराशना
माँ की उस छोटी सी बेरूखी से क्षुब्ध होकर स्वयं को कोसना
माँ की उस थपकी के लिए तरस गया है वो
भटकते-भटकते थक गया है वो
लगने लगी है जिम्मेदारियाँ उसे बोझिल
अब चाहिए उसे अपनी माँ का दुलार
एक थपकी
याद आ रहा है उसे पिता का त्याग
उसके एक छोटे से खिलौने में थी उसके पापा की पूरी दुनिया
और वह खिलौना ही था उसके लिए प्यार का पैमाना
पछतावा है उसे अपने सहज होने का
जानना चाहता है वो फिर से अपने बचपन को
दुबक के रोना चाहता है माँ की गोद में
बताना चाहता है अपने दुखों के बारे में
पर शायद
यह एक कल्पना ही रहेगी
एक अधूरी कल्पना

■■■

क्या लिखूं

- **सार्थक दूबे**
बी. ए. (हिन्दी विशेष), प्रथम वर्ष

सोच रहा हूँ क्या लिखूँ...
क्या लिखूँ उस बच्चे के ऊपर जो अपने बचपन से खेल रहा है..
क्या लिखूँ उस बुजुर्ग के बारे में
जिसकी आंखें तेजाब हो गयी अपने बच्चे की राह ताकते..
क्या लिखूँ उस अनाम व्यक्ति के बारे में
जिसकी सारी इच्छाएं दब गई है
उन जिम्मेदारियों के नीचे
जिसे वो अपना फर्ज समझ के कर रहा है....
क्या लिखूँ उस वतन के आबरू की शान के लिए
अपने एक-एक कण को समर्पित करने वाले के लिए
पर सच कहूँ तो मैं इस काबिल नहीं कि कुछ भी लिख पाऊँ
कोशिश भी करू इतिहास को चुनौती देने की
अपने को शुक्ल और द्विवेदी की बीच रखकर द्वंद्व करने की
अपने विरह को 'महादेवी' के सामने प्रकट करने की
अपनी अलंकारित रचनाओं से 'मतिराम' को प्रसन्न करने की
'कबीर' को आईना दिखाने की.....
'आचार्य शुक्ल ' की आलोचना करने की.....
या प्रकृति की गोद में स्वंय को बैठाकर 'गुप्त जी' को चुनौती देने की

परन्तु मैं लिखूंगा
चकवा-चकवी के दर्द के बारे में...
मधुमालती के सौंदर्य के बारे में...
माँ के उस दर्द के बारे में.....
पिता की उस पीड़ा के बारे
जिसे वह अंदर ही अंदर मारता है...
उस परिवार के बारे में
जो अपने चिराग को 'लौ' से 'आग' होते हुए देखता है
और छोड़ देता है उसे अपनी सफलता की यात्रा पर...
यकीनन उस दर्द को कितना भी अपने शब्दों से व्यक्त करूँ
पर उस दर्द को यह शब्द सह नहीं पाएंगे...
परंतु मैं कहूंगा 'कबीर' के गुरु के बारे में
करूँगा मैं 'रामानन्द' को असिद्ध....
लिखता रहूँगा जब तक यह कलम साथ देगी
जब तक शब्द माला में पिरते रहेंगे
मन मे कुंठाएं उत्पन्न होती रहेगी
जब तक "बख्शी जी" की आत्मा मुझमें जीवित रहेगी
चलती रहेगी यह लेखनी.....
बढ़ती रहेगी मेरे शब्दों की माला...

■■■

मैं क्यूं कहूँ

– **हर्षिता अग्रवाल**

मैं क्यूं कहूँ मैनें अन्धेरों का दीदार किया,
जब माँ ने दुआओं से ही दुनिया रोशन कर दी!
ये नूर, तस्वीरों में नहीं रूहों में उतरा हुआ है,
क्योंकि इन लबों पर मेरी माँ मुस्कुराती हैं!!
लोग बहुत कुछ पाकर भी खुश नहीं होते,
मेरी माँ गर हँस जाये, तो मैं जहान भी हार जाऊँ!!
लोग कहते हैं कि जिन्दगी का कोई भरोसा नहीं,
टूटे जब भी साँसों की डोर, बस माँ की आवाज ही सुन पाऊँ!!
वे वर्णन करते हैं अपनी प्रेमिकाओं की खूबसूरती की,
लेकिन मेरी माँ अपनी सादगी में सबसे खूबसूरत हैं!
पता नहीं बिना डिग्री के कौन सी हकीम है वो,
मेरी आँखों से दिल का हाल जान लेती हैं!
हसरतें थी दुनिया की खूबसूरती देख लेने की,
माँ का दीदार जो किया, दुनिया उस चेहरे में सिमट गयी.
क्योंकि माँ आज भी दिल्ली से दूर है,
मुझे दिल्ली से आज भी कोई दिल्लगी नहीं हो पाई.
घोल देती हैं वो अपनी ममता उस खाने में,
बासी हो जाये तो भी ममत्व से तृप्त हो जाती हूँ!
सोचा करती हूँ सबसे बुरा क्या होता है?
गरीबी? आत्मा का मर जाना? तन्हाई? बुरा दौर?
नहीं, सबसे बुरा होता है माँ का ना होना!
क्योंकि उनके होने से ही,
सूखी रोटी में मिठास है,
और तन्हाई के बुरे दौर में रौनकें हैं!!
मुझे वक्त ही नहीं मिला, उन टीका टिप्पणियों को सुनने का,
मैनें माँ के वात्सल्य की छाँव में पनाह ले ली!
बेटियाँ पराई हैं, दूजे घर को चली जायेगी,
लेकिन ए खुदा, इस दुआओं के घर को वो कैसे छोड़ पायेगी?
जिन्हें दरख्तों के साये में भी धूप ने झुलसा दिया,
काश! वह धूप हिम्मत कर मेरी माँ से उलझ जाती!
काली की रौद्रता, दुष्टों के संहार के वक्त दिखी,
मेरे सपनों के लिये मुझे माँ में,हर का दुर्गा नजर आई!
मुहब्बत, धोखे और बेवफाई से बदनाम हो गयी,
बेहतर होता अगर 'मुहब्बत' उनके स्नेह का ही पर्याय होती!
आँसू, पानी या खून नहीं, आँसू तो मोती है,
पता चला मुझे जब मेरी विदाई के वक्त वो नूरानी पलकें नम हो गयी!
बहुत इच्छाएँ और सपने हैं इस परिन्दे के,
लेकिन सुकून उनकी गोद में,
और जहान उनके कदमों में हैं!!

■■■

तुम भी मारे जाओगे

– **आशुतोष चौबे**
बी ए (हिन्दी विशेष), द्वितीय वर्ष

तुम भी मारे जाओगे उस अनकही,
बेशुमार मोहब्बत से
तुम भी मारे जाओगे किसी न किसी राह पर
एक नजर को देखकर
तुम भी मारे जाओगे जब
काटों के बीच से उठाओगे,
कुछ हरे भरे लाल गुलाब
तुम भी मारे जाओगे
जहाँ तुम्हारा प्रेम हो जाएगा बौना,
माँ के लिए मासूका के सामने
तुम वहाँ भी मारे जाओगे
जब तुम्हारी लॉयल्टी को बेचने के लिए,
लगायी जायेगी अनमोल बोलियां
तुम भी मारे जाओगे
जब कोई अनजान आकर सराबोर करेगा प्रेम से
फिल्मों की दृश्यों की तरह
तुम वहाँ भी मारे जाओगे
जब कोई तुम्हारा भविष्य देखकर कहेगा
कुबेर है तेरे हाथ में
तुम भी मारे जाओगे
जब दुनियाँ तुम्हारे साथ खड़ी होगी।
तुम्हें आगे बढ़ाने के लिए
तुम भी मारे जाओगे
बिल्कुल मेरी तरह
लॉयल लोगों से मुझे यकीन है
जिंदा होने के लिए
तुम कर लोगे आत्म हत्या
किसी आसमान से भी ऊँची छत से कूदकर बचेगी
एक खून से लथपथ देह
जो उठाएंगे वही लोग
जो पहले कभी निष्ठावान थे
तुम्हारे जीने के लिए तुम्हें मरना ही पड़ेगा
नागार्जुन और धूमिल की तरह। ■■■

क्या हो कि अगर

– **नितेश मिश्रा**
बी. ए. (विशेष) हिंदी प्रथम वर्ष.

क्या हो कि अगर शहर ना हो
तो शायद
नहीं बिकेंगे शरीर और आत्माएँ
इश्क में शहर होना जैसी सारी संभावनाएं
सिरे से खारिज की जा सकेंगी
नहीं करेगी कोई प्रेमिका
अपने प्रेमी का इंतजार शहर के बगीचे में
सभी रास्ते सिर्फ गाँव को जाते हों
क्या हो कि अगर ना हो दालान
बस गाँव की मड़ही हो
और ढिबरी लेकर पढ़ रहा हो उसमे
कोई नया ज्ञानोदय
जिनके पन्नों पर छपा हो
कोई नया शहर
क्या हो कि अगर प्रेम ना हो
तो विद्यालय में कितना होगा अनुशासन
कितनी दूरियाँ होंगी
दो लोगों के बीच
चाँद और चांदनी की
वो सारी बातें जो बांध के रखती थी
दो लोगों का दिल
कहाँ चली जाएंगी
सभी प्रेम की कविताओं को
कौन लगाएगा आग
और कौन लटकायेगा

प्रेम कवियों को सूली पर
क्या हो कि अगर
पुरानी सभी स्मृतियाँ कर ले आत्महत्या
तो मिट जाएगा मेरा पटीदार के साथ झगड़ा
साहूकार कर दे मेरे बाप को पहचानने से इंकार
और भूल जाएं माताएँ अपनी देवी की मनौतियां
भूल जाएँ सब गीता के उपदेश
और पुरानी सभी स्मृतियों की आत्महत्या से
भूल जाएं सब धार्मिक स्थल के दंगे
दूरियां जो ग्रंथों ने रची है
क्या हो कि अगर
ये शहर
इस शहर में प्रेम
प्रेम की सभी स्मृतियां
नष्ट हो जाएँ.....

■■■

समाज का अंत

इस समाज का अंत
घर से भागी हुई लड़की से शुरू होगा
इस तरह के अवसर क्रांतिकारी होते हैं
और नेतृत्व करते हैं
जो अपने पीछे कई
अपराध भी लेकर आते हैं
जैसे कि
घर से भागना
पिता के साथ बितायी गयी
कई शामों की हत्या का अपराध होगा
और वो सभी दुपहरी खीझ उठेंगी
जिनसे माँ की यादें जुड़ी होती है
बस कोई लड़की यूँ ही नहीं भाग सकती
अपने घर से
घर से भागना
कहीं जाने के लिये नहीं होता

■■■

वो लोग मर चुके है

- **नितेश मिश्रा**
बी. ए. (विशेष) हिंदी प्रथम वर्ष.

जैसे कि मरना ही उनके जीवन का साध था
उन्होंने कभी कुछ नहीं बोला
ना खुद से ना किसी और से
जो हो रहा था सब देखते गये और सहते गये
उन्होंने ईश्वर से भी कोई मदद नहीं मांगी
उनकी मृत्यु का कारण ईश्वर बनता जा रहा था
हत्यारे स्वयं को ईश्वर का दूत बताते
और हत्याएं अब चरम पर थीं
मरे हुए लोग वापस नहीं आते
ना ही उनके ईश्वर
और अब लगता है कि
होने जैसा कुछ नहीं होता

■■■

सच्चाई आजकल...

- **अभिषेक आरव**
हिंदी (विशेष) प्रथम वर्ष

सच्चाई आजकल यह जो प्यार है, एक दिखावा है।
प्यार से खेलने वाले... कुछ जो हवसी हैं।
वे तो जिस्मों के भूखे हैं।
आए दिन सरे बाजार इश्क का खेल होता जरूर है,
पर इस खेल को कोई... रोकता नहीं है।
अपने समाज में... कुछ लोगों को बेटी नहीं चाहिए।
मगर उनको अपनी हवस मिटाने के लिए,
एक लड़की जरूर चाहिए।।
अब इन हवसियों को कौन समझाए?
परिवार में इनके भी... मां- बेटियां हैं।
वह मोहब्बत के नाम पर जिस्म हैं।
गांव जाना चाहता हूं
शहरों की चकाचौंध से तंग आ चुका हूं,
रोजमर्रा की दौड़ती जिंदगी से थक सा गया हूं,
यहां की हवाओं में दम सा घुटने लगा है,

अजनबी शहर में अजनबी ही बनकर रह गया हूं,
सोचता हूं क्यूं न...
एक बार फिर से शहर से दूर उसी गांव जाया जाए,
जहां मिट्टी की खुशबू आती है,
खेतों पर बहते पानी की आवाज आती है,
एक बार फिर से...
शहर से दूर गांव जाना चाहता हूं, हरे-भरे खेतों का सफर

■■■

तलाश

– **अमन प्रताप सिंह**
हिंदी (विशेष) द्वितीय वर्ष

तलाश एक ऐसा शब्द है जिससे मूल रूप से मनुष्य जीवन की सार्थकता पूर्ण होती है । शायद इस वाक्य को सुनना थोड़ा सा अटपटा अवश्य लगे परंतु वास्तविकता में सत्यता यही है । मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन के तमाम पहलुओं, चिंताओं, विषादों, पीड़ाओं और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक मार्ग खोजता है, जिस मार्ग का अनुसरण करके वह अपनी इस भौतिक काया के कार्यों को पूर्ण करने का प्रयास करता है। जिसमें सफलता का हिस्सा उसी भाँति होती है जिस प्रकार अथाह समुद्र की लहरों में गोता लगाकर ऊपर आने में ।

कभी हमने विचार किया है कि जिन्दगी में हम किस सार्वभौमिक अनुपम चीज की ओर भागते हैं या किस चीज को प्राप्त करके हम संसार में अपने नाम अजय होने देना चाहते हैं ।

तो उत्तर में कुछ का मानना होगा 'विद्या' क्योंकि एक कलम की ताकत से संसार को जीत जा सकता हैं जहाँ पर शस्त्र भी अपनी धार को पैना नहीं कर पाता है, वहाँ पर संसार को कलम की ताकत ही बदल देती है।

दूसरे तर्क में लोग बोलेंगे कि 'धन-दौलत' परंतु कभी विचार किया है कि ये धन आपको सभी भौतिक सुविधाओं को उपलब्ध तो करा सकता है पर पूर्ण सुख नहीं दे सकता है ।

तीसरे में लोग 'साहस और प्रेम' को खोजते हैं पर ये दोनों ही चीजें समय के साथ परिवर्तित होती हैं और भौतिक संसार में समाप्त भी हो जाती हैं।

उपर्युक्त सार को समझ कर एक बात अवश्य सामने आती है कि इन सभी चीजों में हम आनंद की प्राप्ति ही खोजते हैं, पर क्या सच में हमें जिस आनंद की तलाश है उसे हम खोज पाते हैं। एक ऐसा सुख जिससे मोक्ष की प्राप्ति का द्वार खुलता हो उसकी क्या हमने कभी कल्पना की है। हम तो केवल भौतिक अर्थात दृश्य आनंद की प्राप्ति की खोज में हैं और रेस के घोड़े की तरह भागे जा रहे हैं।

और इस आनंद की प्राप्ति जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है, हमें माँ-बाप, भाई-बहन सगे सम्बन्धियों के सान्निध्य में जो दुलार मिलता है वह अद्भद होता है। थोड़े बड़े होते हैं तो मित्रों के साथ आनंद मिलता है फिर विपरीत लिंग के प्रति जो आकर्षण होता है उसे हम जिन्दगी का सबसे अच्छा आनंद समझते हैं और साथ ही वैवाहिक संबंधों में लिप्त होकर अपनी वासनाओं को पूर्ण करने का प्रयास करते हैं, पर जब तक धन नही तब तक आनंद पूर्ण ही नहीं होता सो हम धान के पीछे भागते हैं और उसकी प्राप्ति को ही आनंद समझने लगते हैं। अंततः एक दिन ऐसा आता है कि ये भौतिक जगत के सुखों को पूर्ण करने की लालसा जीवन में लिए ही हम इस संसार से विदा भी हो जाते हैं पर सुख रूपी अग्नि को पूर्ण नहीं कर पाते हैं ।

इसी चक्र के साथ हम फिर से इस धरा पर अवतरित होते हैं और ये स्वतः प्रक्रम चालू हो जाता है । ये जन्म-मरण की प्रक्रिया भी अनवरत प्रकार से चलती रहती है ।

सुखों की अगर वास्तव में तलाश है तो 'खुद को पहचानो' क्योंकि आप सुखों को तभी प्राप्त कर सकते हो जब अपनी कमजोरियों से लड़ना सीख जाओगे, और जब खुद को पहचान जाओगे तो दूसरों के दुखों को भी दूर कर पाओगे। क्योंकि आप ही दैवीय शक्ति हो आप संसारिकता की रेखा में जकड़े हुए सुख-दुख, लाभ-हानि, जय-पराजय के मोह से बाहर निकलिए। तभी आप आनंद की खोज में निकल पाओगे अन्यथा की स्थिति में अपने आप को नष्ट करते जाओगे और समाप्त हो जाओगे। पर वास्तविकता में सुख रूपी प्यास से तृप्त नही हो पाओगे, हम खुद को पहचानें कि खोज में निकले थे पर किन-किन झंझावातों में फँसे रह गए और जीवन समाप्त करते गए पता ही नही चला बस ये ही शब्द होंगे हमारे पास इसलिए खुद की तलाश करो।

क्योंकि मन की कुंठाएँ, आंखों की बेचैनी, माथे पर सिलवटें, होठों पर चुप्पी और सम्पूर्ण चेहरे पर हल्की सी बनावटी मुस्कुराहट बहुत कुछ तो नहीं पर कुछ सम्वेदनाएँ अवश्य बयाँ कर देती है। बस हमें समझना जरूरी है उस मुरझाये हुए पुष्प की तरह चेहरे को, जो सूरज की रोशनी के साथ खुद को निखारना चाहता है, फिर से इस पूर्व की काली निशा की परछाइयों से लड़ना चाहता है, जो समेटना चाहता है समाज के हर उस एक रंग को जो उसे कुरेदते है, तथा वह तोड़ना

चाहता है बन्धनों में बँधी व्यवस्थाओं की सारी दीवारों को जो उसके हितों से लड़ने को रोकतीं है, और फिर निकलकर इस सम्पूर्ण मकड़जाल से एक अनुपम, सुगठित, पवित्र, क्रांतिकारी, साहसी दुनिया में अपने कर्तव्यों से निर्मित एक नई दिशा में ढ़ालने का प्रयास करता है जहाँ से उसके पैरों की अमिट छाप को जन्म जन्मांतर तक याद किया जाए।

अगर देखें तो इन सम्पूर्ण सन्दर्भो से निकलकर आती है मन और कर्म की इच्छाशक्ति जो उन सामाजिक शूलों के समान है जो पृथ्वी पर हरे कैक्टस के समान विद्यमान है और कहीं न कहीं छूने पर समाज को बदलने का प्रयास कर रही है। सब कुछ हमारी इच्छाशक्ति पर ही तो निर्भर है अगर चाहे तो सरल से सरल कार्य नही कर पाएंगे और अगर ठान लें तो चींटी के छोटे शरीर होने पर भी भारी से भारी वजन उठा लेंगे, अर्थात जटिल से जटिल कार्य भी आसानी से बखूबी समयानुसार यथोचित ढंग से कर लेंगे और समाज क्या सम्पूर्ण प्राचीन धाराओं को बदल कर रख देंगे। बस जरूरत है तो अपने आपको पहचानने की।

वास्तव में यही तो है इस चेहरे की छवि जो शांत व हल्की हँसी के साथ बहुत कुछ भेदना चाहती है और छोटी किरण के रूप में खुद को स्थापित करते हुए दैदीप्यमान होना चाहती है जिसकी तलाश में हम लगकर खुद को पूर्ण करते हैं, और संसारिकता से विरक्ति से मार्ग प्रशस्त करते हैं।

■■■

कफन की सार्थकता

– **मनीष**

प्रेमचन्द की अन्तिम कहानी 'कफन' अपने छोटे से कलेवर में ही जाति-व्यवस्था के ढकोसले को तार-तार कर देती है। यह कहानी जिस परिवेश से निकली है उसके समाज होने पर ही प्रश्न-चिन्ह लगा देती है। सामान्य शब्दों में मनुष्यों के उस समूह को समाज कहते हैं जिनमें गहरे स्तर पर पारस्परिकता मौजूद हो। इसी बुनियादी शर्त को पूरा न करने के कारण 'कफन' का मानव-समूह समाज की कोटि में ही नहीं आता। अपने समाज की सांस्कृतिक श्रेष्ठता का दंभ भरने वाला भारतीय समाज को यह कहानी आइना दिखाती है।

'कफन' कहानी की मूल संवेदना क्या है? इस कहानी का निहितार्थ क्या है? यह कहानी क्यों लिखी गई? इन प्रश्नों पर विचार किए बिना न तो 'कफन' की सार्थकता समझी जा सकती है और न ही उसके महत्व का उल्लेख सम्भव है। यह कहानी गरीबी का भयानक मंजर सामने रखती है, साथ ही भूख की वह दर्दनाक तस्वीर प्रस्तुत करती है जिसके कारण कोई भी मनुष्य घीसू-माधव बन सकता है। घीसू-माधव का अमानवीय व्यवहार उनके जीवन-परिस्थितियों की स्वाभाविक परिणति है। लगातार, सालों-साल के भूखे इंसान से इंसानियत की उम्मीद रखने वाला सभ्य समाज वस्तुतः अपनी हैवानियत का परिचय दे रहा होता है। घीसू-माधव के जीवन के परिदृश्य को जानने के बाद उनसे मानवीय व्यवहार की मांग करने वाले व्यक्ति से अधिक अमानवीय कोई और हो ही नहीं सकता। महानगरों के सड़क किनारे कूड़े के ढेर से खाने योग्य वस्तुओं (कई बार भोज्य-पदार्थ भी) को चुनकर खाते हुए बच्चे, बुजुर्गों, विक्षिप्त स्त्री-पुरुष का नजारा आम है। किसी भी समाज के लिए इससे अधिक अमानवीय अवस्था की कल्पना असंभव है कि एक ही कचड़े के ढेर से पशु व मानव दोनों अपने भोजन पाने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हों। ऐसे में घीसू-माधव का कारनामा इससे अधिक अमानवीय क्योंकर है?

घीसू बीस साल पहले की ठाकुर की बारात याद करता है जिसमें उसने अंतिम बार तृप्त होकर भरपेट भोजन किया था। घीसू कहता है-

'वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला।'

इससे पहले ही कहानी का कथावाचक अपनी ओर से जोड़ता है- 'वह उसके जीवन में, एक याद रखने लायक बात थी और आज भी उसकी याद ताजा थी।' घीसू एक बार ही सही, अपने जीवन में स्वादिष्ट भोजन का आनन्द ले चुका है, लेकिन माधव के लिए तो स्वादिष्ट भोजन अब तक अबूझ पहेली की तरह है। अब तक उसके जीवन में यह अवसर एक बार भी नहीं आया है। स्वादिष्ट भोजन तो छोड़ ही दें, दोनों अक्सर भूखे रहते हैं। कथावाचक प्रारम्भ में ही कहता है-

'घर में मुट्ठी भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव

बाजार में बेच आता...विचित्र जीवन था इनका। घर में मिट्टी के दो-चार बर्तनों के सिवा कोई संपत्ति नहीं। फटे-चिथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे।

कोई व्यक्ति भूख से निजात पाने के लिए चोरी करे, समझ में आता है। एक बाप अपने बेटे पर तथा बेटा अपने बाप पर एक आलू का अधिक हिस्सा खा जाने के लिए शक करे, यह भी संभव है। किन्तु आलू खाने के लिए एक पति अपनी पत्नी को प्रसव-पीड़ा में तड़पने और अन्ततः मर जाने के लिए छोड़ दे! यह समझ से परे है। उसमें भी माधव की पत्नी बुधिया, कोई आम भारतीय गृहिणी नहीं थी जिसपर प्रायः यह आरोप लगा दिया जाता है कि वह केवल घर की देखभाल करती है। बुधिया केवल घर की देखभाल ही नहीं करती बल्कि उस घर को, गुरबत में ही सही, केवल अपने परिश्रम के दम पर चलाती भी है। कथावाचक बुधिया के बारे में अपनी राय व्यक्त करता है-

'माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जबसे वह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी। पिसाई करके या घास छीलकर वह सेर भर आटे का इन्तजाम कर लेती थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जबसे वह आयी, यह दोनों और भी आलसी और आराम-तलब हो गए थे, बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे।'

स्पष्ट है कि बुधिया वह स्त्री है जिसने अपनी मेहनत के बल पर अक्सर भूखे रहने वाले बाप-बेटे को पिछले एक साल से भूखा नहीं रहने दिया था। वह इस परिवार की व्यवस्था को, पिछले एक साल से अभाव में ही सही, सुचारू रूप से चला रही थी। इसी बुधिया के दम पर वे दोनों और अधिक आलसी हो गए थे और समाज में अकड़ने लगे थे। परिवार की इतनी महत्त्वपूर्ण महिला को इतनी आसानी से मरने देना समझ से परे है। वह भी केवल एक दिन की भूख मिटाने के लिए, एक ही आलू के अधिक हिस्से को खाने की आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण! क्या भूख इतना अमानवीय बना देता है कि व्यक्ति यह भी भूल जाए कि बुधिया को बचा लेने से सालों-साल तक भूख उनके पास फटक भी नहीं सकता। जी हाँ, इस कहानी के माध्यम से प्रेमचन्द भूख से उपजी अमानवीयता की इसी गहनता का निदर्शन करना चाहते थे। प्रेमचन्द यह दिखाना चाहते थे कि भूख से बिलबिलाता हुआ इन्सान दरअसल इन्सान रह ही नहीं जाता, चाहे वह किसी भी आधुनिक अस्मिता से सम्बन्ध रखता हो। अब यहाँ ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा उठाए गए प्रश्न का सामना करना आवश्यक है। वह पूछते हैं कि-

'चमारों का कुनबा' कहने की जरूरत प्रेमचन्द जैसे युगीन कथाकार को क्यों पड़ी? सिर्फ यह भी कह सकते थे कि घीसू-माधव का कुनबा था। लेकिन प्रेमचन्द 'चमार' जाति-वाचक संज्ञा जोड़ते हैं। तो जरूर उन्हें इसकी जरूरत महसूस हुई होगी।'

हाँ, प्रेमचन्द को निश्चित तौर पर इसकी जरूरत महसूस हुई होगी। यह जरूरत आज भी वैसे ही बनी हुई है। भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की आपसी बुनावट ही इस तरह की है कि सामाजिक अनुक्रम प्रायः आर्थिक सम्पन्नता या विपन्नता का भी नियमन करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् इस स्थिति में कुछ बदलाव अवश्य आया है, किन्तु 1936 ई. के भारतीय समाज का स्वरूप यही था। 'कफन' में जिस भयावह गरीबी व भुखमरी का चित्रण है ऐसी जिन्दगी प्रायः तथाकथित निचली जाति के लोग ही जीते हैं। वीर भारत तलवार ने भी अपने आलेख 'सभ्यता के खिलाफ विद्रोह की कहानी' में यही बात कही है। दलितों को छोड़कर किसी और ने जीवन की इस भयावहता का अनुभव नहीं किया है। अगर प्रेमचन्द ने किसी भी गैर दलित जाति का उल्लेख यहाँ किया होता तो यह कहानी अस्वाभाविक ही नहीं पूर्णतया कृत्रिम हो जाती।

ओमप्रकाश वाल्मीकि एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाते हैं। वह आरोप लगाते हैं कि 'घीसू-माधव की इस स्थिति के लिए जिम्मेवार सामाजिक व्यवस्था की ओर प्रेमचन्द उल्लेख तो छोड़िए संकेत तक नहीं करते।' प्रेमचन्द पर लगाया गया यह आरोप सरासर बेबुनियाद है। प्रेमचन्द को समाज में व्याप्त गरीबी ही नहीं विभिन्न सामाजिक आर्थिक असमानता का भी कारण मालूम था। वह अपने उपन्यासों और कहानियों में हमेशा इन कारणों की शिनाख्त करते रहते थे। उदाहरण के लिए 'रंगभूमि', 'गोदान' आदि उपन्यास एवं 'सवा सेर गेहूँ' कहानी को देखा जा सकता है। इसमें प्रेमचन्द पहले तो गरीबी, बेरोजगारी, जातिगत असमानता आदि समस्याओं का चित्रण करते हैं। बाद में इन समस्याओं के कारण के तौर पर धार्मिक-आर्थिक शोषण तंत्र का भी भांडाफोड़ करते हैं। कफन कहानी में भी प्रेमचन्द घीसू-माधव की दुर्दशा के लिए जिम्मेवार कारणों की पड़ताल करते हैं। सबसे पहला कारण, घीसू-माधव की चारित्रिक दुर्बलता है जिसे आलोचकों ने 'कामचोर-दर्शन' कहा है। 'गोदान' का होरी अपने पूरे परिवार के साथ मिलकर जी तोड़ मेहनत करता है। फलस्वरूप फटेहाली में ही सही होरी सपरिवार अपना जीवन-यापन तो कर ही लेता है। होरी की त्रासदी का कारण उसकी तथाकथित महत्त्वाकांक्षा 'गाय' एवं पूरी व्यवस्था है, वह स्वयं नहीं। इस शोषणमूलक व्यवस्था को 'कफन' में कथावाचक स्वयं उपस्थित होकर चिन्हित करता है-

'जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत, उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलता से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था...।

इस पूरे प्रसंग को पढ़ जाएँ। प्रेमचन्द घीसू-माधव की आलसी प्रवृत्ति, भाग्यवादी दृष्टिकोण, कर्म से पलायन आदि के लिए किसे दोषी करार दे रहे हैं? इस शोषण-मूलक व्यवस्था को ही न। यह शोषणकारी व्यवस्था ही घीसू-माधव जैसे चरित्रों को जन्म देती है। यहाँ प्रेमचन्द घीसू-माधव के साथ खड़े हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि को भले ही सुनाई न दे, प्रेमचन्द तो चीख-चीख कर कह रहे हैं कि जब तक यह शोषक व्यवस्था कायम है, घीसू-माधव लगातार जन्म लेते रहेंगे।

व्यवस्था का चरित्रोद्घाटन के सन्दर्भ में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है। कफन के लिए जुटाए गए पैसे को घीसू-माधव शराब-कबाब में उड़ा देता है। सतही तौर पर देखने से लगता है कि वे दोनों भूख से निजात पाने के लिए ऐसा करते हैं। किन्तु वह ऐसा करके हिन्दू समाज व धर्म द्वारा निर्मित शोषणकारी रीति-रिवाजों की धज्जियां उड़ा रहे थे। उनमें अपनी अस्मिता का, अपने स्वत्व का बोध भले न हो, किन्तु वह यह तो समझते ही हैं कि-

'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चिथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिये।'

इतना ही नहीं वे दोनों धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों से भी प्रश्न करते हैं-

'दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बामनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं?

बड़े आदमियों के पास धन है, चाहे फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है?'

यह हिन्दू धर्म द्वारा बनाए गए विधि-निषेध का उल्लंघन है। घीसू और माधव समाज व धर्म के आपसी गठबंधन द्वारा खींचे गए लक्ष्मण-रेखा का अतिक्रमण करते हैं- सचेत होकर अथवा अनजान बनकर। 'गोदान' का होरी तथा 'सवा सेर गेहूँ' का शंकर कुरमी इन्हीं धार्मिक प्रतीकों स्वर्ग एवं नरक के डर से अपना जीवन होम कर लेते हैं। वह किसान से मजदूर बन जाते हैं, मजदूर से बंधुआ मजदूर और एक दिन बिना कोई विरोध किए मर जाते हैं। होरी और शंकर कुरमी इस शोषणकारी व्यवस्था की चक्की में खुद तो पिसते ही हैं, अपने संतान को भी पिसने के लिए जीवित छोड़ जाते हैं। इसी स्वर्ग-नरक के हिन्दू-मिथक को घीसू-माधव तार-तार कर देता है। कफन के पैसे से शराब व कबाब खाकर। वे दोनों इतना तो जान ही गए हैं कि 'गोदान' करने से या 'ब्राह्मण का कर्ज इसी जन्म में चुका कर मरने से' या फिर मृतक को 'कफन' के साथ श्मशान ले जाने से कोई स्वर्ग नहीं जाता। हिन्दू मिथकों की जानकारी रखने वाला व्यक्ति यह जानता है कि मिथकों के अनुसार मरणोपरांत बैकुंठ जाना, स्वर्ग जाने की अपेक्षा अधिक पुण्य का प्रतिफल है! घीसू निम्नलिखित वक्तव्य के माध्यम से हिन्दू व्यवस्था की जड़ में दही डाल रहा था।

'हां बेचारी, बैकुंठ में जायेगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुंठ में जायेगी, तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जायेंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं और अपने पाप धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं?'

व्यवस्था के प्रति विद्रोह का यह प्रेमचन्द का अपना ढंग है। 'वह बाबा साहब अम्बेडकर की मान्यताओं को मानते हैं या नहीं? गांधी से प्रभावित हैं। वह गांधी के पक्ष से दलित समस्या को देखते थे, अम्बेडकर के पक्ष से नहीं।' इन बातों में सच्चाई के आसार हैं, किन्तु प्रेमचन्द यह जानते थे कि शोषणकारी व्यवस्था का विद्रोह कोई शोषित ही करेगा। शोषक अपने हितों को अनदेखा करते हुए इस व्यवस्था का विद्रोह कर ही नहीं सकता। इसीलिए प्रेमचन्द घीसू-माधव की जाति 'चमार' की घोषणा करते हैं। अस्पृश्य जातियां ही हजारों वर्षों से हिन्दू समाज-व्यवस्था की चक्की में पिसती रही है। प्रेमचन्द इसी अस्पृश्य जाति से इस हिन्दू समाज-व्यवस्था के विद्रोह की उम्मीद रखते थे। उनके इसी उम्मीद का नाम घीसू-माधव है और घीसू-माधाव के विद्रोह का दस्तावेज है 'कफन'।

एक बात और, 'कफन' कहानी को बुधिया की परिस्थिति को ध्यान में रखकर उसकी दृष्टिबिन्दु से पढ़ने पर बिल्कुल दूसरी तस्वीर नजर आती है। बुधिया को जितनी आसानी से दोनों बाप-बेटे मरने देते हैं, वह असह्य पीड़ा देती है। एक पल के लिए इस घटना पर यकीन करने का मन नहीं करता, किन्तु दूसरे ही पल अपनी पत्नी की गाढ़ी कमाई को शराब में उड़ाते हुए देख कर विरोध करने पर, पति द्वारा पत्नी को पीटे जाने की घटनाओं को देखकर कफन की इस घटना की विश्वसनीयता और अधिाक बढ़ जाती है। भारतीय समाज का ढाँचा कमोबेश इसी तरह का है। एक स्त्री के जीवन और मृत्यु दोनों का इतना ही मूल्य है कि वह पुरुष की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके! भारतीय समाज इतनी ही आसानी से एक स्त्री को मरने देता है और मरने के बाद इतना ही उदासीन बना रहता है। कफन कहानी बहुत ही सहजता से भारतीय समाज में एक आम स्त्री की वस्तुस्थिति का चित्रण करती चलती है। बुधिया के विशेष प्रसंग में घीसू-माधव की उदासीनता, अमानवीयता पितृसत्तात्मक भारतीय समाज की तस्वीर प्रस्तुत करती है। घीसू-माधव की अमानवीयता के इस पक्ष की न तो उपेक्षा की जा सकती है और न ही स्फाई दी जा सकती है।

कफन कहानी गरीबी व भूख से संबंधित है। इस गरीबी के लिए व्यक्ति स्वयं जितना जिम्मेवार है उससे अधिक जिम्मेवार यह शोषणकारी व्यवस्था है। जब तक यह व्यवस्था कायम है तब तक कफन कहानी की सार्थकता व महत्व निर्विवाद है। इसके अलावा स्त्री के प्रति पुरुषों का स्वाभाविक अमानवीय व्यवहार भी रेखांकित करने योग्य है । यह कहानी व्यवस्था के प्रति विद्रोह का प्रेमचन्द के अपने ढंग का प्रतिपादन करती है। कफन की आवश्यकता बुधिया के मृत शरीर से अधिक इस जीवित हिन्दू समाज-व्यवस्था को है। घीसू-माधव अपने तरीके से इस शोषणकारी समाज-व्यवस्था को कफन देने की शुरुआत कर चुके हैं।

■■■

डिबिया

– बृजमोहन वत्सल

घर के दरवाजे पर दोनों तरफ बने आलों में से एक में हर शाम को एक डिबिया जलती थी। वही डिबिया जो तिहत्तर साल की मंगलो ने अपने हाथों से बनायी थी। कूड़े में फैंकी गयी छोटी शीशी जिसका ढक्कन ऐल्यूमिनीयम का था, उठा लायी थी मंगलो। सोचा था एक डिबिया घर के अंदर जलती ही है, एक और हो जाएगी तो दरवाजे के बाहरी आले में रखेगी तो गली में भी थोड़ा उजाला हो जाएगा। मंगलो का छोटा सा घर पीली मिट्टी से पुता हुआ था और चार दीवारें घर के छप्पर को थामे हुई थी। लकड़ी का पुराना दरवाजा जो पतासे की कीलों से बना हुआ था, के बाहर ही गली का मोड़ था जिसमें उजाला करने की चाहत में, कूड़े से वो छोटी काँच की शीशी उठा लायी थी मंगलो। सड़क से करीब अस्सी किलोमीटर दूर बसा था मंगलो का छोटा सा मौजी नामक गाँव जिसमें करीब तीस घर थे। सड़क के पास बसे गावों में बिजली थी जो पूरे दिन में तकरीबन आठ घंटे तक आ ही जाती थी। मंगलो के दोनों बेटे मोहक और सुबल बिजली के चलते मौजी गाँव छोड़के सड़क के किनारे बसे गाँव तारपुर में अपने-अपने परिवारों के साथ आके बस गए थे। मंगलो का मौजी से प्यार, जहाँ वो शादी करके मोहक और सुबल के पिता के साथ सात फेरे लेके आयी थी, उसे छोड़ने नहीं दे रहा था, इसीलिए बेटों के समझने के बाद भी वो मौजी में ही रहना चाहती थी। मौजी का उसका घर उसे जान से भी प्यार था तभी तो इतनी उम्र में भी अकेली ही रहती थी बिना अपने बेटों के, क्योंकि मंगलो के पति का बीमारी से देहांत हुए काफी साल हो गए थे।

महीने में एक बार जरूर जाती थी मंगलो अपने बेटों और पोते-पोती से मिलने और गाँव से आटे का हलवा बनाके ले जाती थी अपने पोते-पोती के लिए। कभी-कभी गाजर का हलवा भी ले जाती थी होली और दिवाली जैसे त्योहारों पर। सभी का कहना था कि हलवा मंगलो से अच्छा कोई नहीं बना सकता था और इसी हलवे के कारण सामने रहने वाले हरिया के बेटे कृष्णा जो तकरीबन सोलह साल का था, से अच्छी भली दोस्ती हो गयी थी। कृष्णा ही था जो बूढ़ी मंगलो के पास आकर बैठता था और मंगलो की उसकी बचपन से लेकर अब तक की बातें और कहानियाँ सुनता रहता था वो भी सिर्फ एक हलवे के निवाले के लिए। कृष्णा प्यार से मंगलो को दादी बुलाता था और उसकी दादी उसे बिटवा। दादी का बिटवा ही था जो दादी के लिए सरकारी नल से पानी लाके देता था और घर के बाकी सारी कामों में भी मदद करता था। कृष्णा दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था और हमेशा स्कूल से आते ही मंगलो से मिलने जाता था, आ र बिटवा और दादी की दोस्ती ही ऐसी थी जिसमें प्यार था, हलवा था और अपनापन था।

मंगलो के पास एक बकरी थी जो दरवाजे के बाहर गड़े एक छोटे से खूँटे से बंधी रहती थी जिसे कृष्णा प्यार से राधा बुलाता था और उसके पालन-पोषण में दादी की मदद करता था। कृष्णा ही उसे कभी-कभी जंगल घुमा लता था और राधा भी छोटे पेड़ों के पत्ते बड़े चाव से खाती थी। राधा पत्ते खाती रहती थी और कृष्णा बैठे-बैठे राधा से बात करता रहता था क्योंकि कृष्णा की राधा से दोस्ती गली में रहने वाले हम-उम्र कल्लू से ज्यादा थी। कल्लू राधा को बहुत परेशान करता था जो कृष्णा को पसंद नहीं था जैसे कि कल्लू बकरी की पीठ पर बैठके टिक-टिक करके उसे चलता था। राधा उसका बोझ नहीं उठा पाती थी फिर भी दो चार कदम चलके गिर जाया करती थी। कृष्णा की कल्लू से कई बार लड़ाई भी हो गयी थी इस बात को लेके, क्योंकि राधा उसकी दोस्त ही नहीं परिवार भी थी जिसके दूध की चाय बनाके मंगलो उसे पिलाती थी।

पढ़ने में तो कृष्णा गाँव का सबसे होनहार लड़का था पर उसकी छोटी बहन लाली भी बहुत अच्छे से अपनी पढ़ाई करती थी जो आठवीं की पढ़ाई कर रही थी। लाली हमेशा अकेली ही खेलती थी क्योंकि कृष्णा या तो उसकी दादी के पास होता था या अपनी राधा के साथ। वैसे शाम में दोनों साथ ही बैठके पढ़ते थे वो भी एक डिबिया से जो हरिया ने उनके पढ़ने के लिए बनायी थी। जिसकी तरफ डिबिया होती उसको अच्छे से दिखायी देता और दूसरे को थोड़ा कम, तो वो दोनो डिबिया को एक दूसरे की तरफ खींचते रहते और लड़ते रहते थे। गाँव में बिजली ना होने की कमी का असर उनकी पढ़ाई पर भी पड़ता था पर कृष्णा अपनी लगन का पक्का था तभी तो अपनी कक्षा का मॉनिटर भी बन गया था। उसका स्कूल गाँव से दस किलोमीटर दूर नंदपुर में था, जहाँ दोनो भाई बहन पढ़ने जाते थे।

कृष्णा की दसवीं की परीक्षा आने वाली थी तो लाली हमेशा उसे चिढ़ाती रहती थी कि अब पास होके दिखाना! क्योंकि दसवीं की बोर्ड की परीक्षा होती थी जिसका सेंटर दूसरे स्कूल में पड़ता था जो काफी दूर होता था उनके स्कूल से। कभी-कभी खेल खेल में दोनो एक दूसरे से पूछा करते थे कि वो पढ़ लिखकर क्या बनेंगे। वो बस एक ही बात कहता था कि उसे अच्छा नहीं लगता मंगलो का यूँ अकेले रहना बिना उसके परिवार के और इसकी वजह है बिजली जिसके कारण उसके बेटे उससे दूर रहते हैं इसलिए वो बड़ा होके एक बिजली का खम्बा लगवाएगा ताकि उसके गाँव में भी बिजली आ सके और मंगलो के बेटे उसके पास आके रहे और उसकी देखभाल करे। छोटी उम्र में ही

बड़ी बातें करने लगा था कृष्णा और ये सब था उसकी दोस्त मंगलो के लिए उसका दादी-पोते जैसा प्यार।

शाम में टहलते हुए रास्ते में कूड़े पर जो शीशी मंगलो को मिली थी उसने उसे लाकर घर में ताख पर रख दिया। सोचा कल सुबह कृष्णा को दिखाऊँगी और नई डिबिया बनाऊँगी। सुबह उठके, काँच की शीशी हाथ में लिए, रोज की तरह कपड़े पहने, लाल रंग का घाघरा, सफेद रंग की कमीज और हल्के लाल रंग का ओन्ना सर पर रखे अपने दरवाजे पर खड़ी मंगलो ने सामने से कृष्णा को आवाज लगायी - ह्कृष्णा, बिटवा इधर तो आ!

'क्या हुआ दादी?'- कृष्णा दोड़ते हुआ आया।

'ये देख मुझे खाली शीशी मिली है'- मंगलो ने कृष्णा को खाली शीशी दिखाते हुए कहा।

'इसका क्या करोगी दादी?'-कृष्णा ने शीशी को देखते हुए बोला।

'तुझे पता है ना कि मेरे पास एक ही डिबिया है जो मैं रात होने पर घर के अंदर जलती हूँ'-मंगलो ने हाथ हिलते हुए कहा।

'अच्छा! दूसरी डिबिया बनाओगी तुम'-कृष्णा ने समझते हुए कहा।

'हाँ सही समझा! देख इसे मैं इस आले में बाहर रखा करूँगी ताकि बाहर भी उजाला रहेगा रात में और में तेरी राधाा को भी देख लिया करूँगी, ठीक है ना!'- मंगलो ने आले की तरफ इशारा करते हुए, शीशी को वहाँ रखते हुए कहा।

'सही है दादी, बाहर भी उजाला और अंदर भी'-कृष्णा ने मुस्कुराते हुए कहा।

'हूँ... अच्छी है ना शीशी!'-मंगलो ने खुश होते हुए शीशी देखते हुए कहा।

'तू देखना दादी एक दिन मैं यहाँ बिजली लगवाऊँगा तो हर तरफ उजाला होगा गाँव में!'-गर्दन हिलते हुए कृष्णा ने दादी से कहा।

'अच्छा जी! बड़ी-बड़ी बातें करने लगा है।'-कृष्णा के बालों को हाथ लगाते हुए मंगलो के कहा।

'सच में दादी और फिर मुझे डिबिया से नहीं पढ़ना पड़ेगा बल्कि बल्ब में पढ़ाई करूँगा शहर के जैसे'-पूरे आत्मविश्वास के सात कृष्णा ने जवाब दिया।

'अब बातें ही करता रहेगा या डिबिया बनाने के लिए क त्तर भी लाएगा'-कृष्णा को शीशी दिखाते हुए मंगलो ने कहा।

'अभी लाता हूँ ढूँढके तब तक तू इसके ढक्कन में छेद कर ले और मिट्टी का तेल भर ले इसमें'-कृष्णा ने मुड़ते-मुड़ते कत्तर को लाने के लिए जाते हुए कहा।

डिबिया, किसी भी शीशी के ढक्कन में छेद करके और उसमें एक छोटी सी कत्तर लगाके बनायी जा सकती थी जो मिट्टी के तेल से जलती थी। इसका उजाला बहुत ज्यादा तो नहीं होता था पर हाँ घर में उजाला बना रहता था जैसे रात में एक छोटा सा चाँद लगा हो। डिबिया के जलने पर लौ से धुँआ निकलता था जिसके कारण आले में ऊपर की ओर अंदर काला हो जाया करता था। मंगलो इस धुएँ से अपने लिए काजल बनाती थी। जैसे ही आले में धुँआ इकट्ठा होकर एक परत सा बन जाता था मंगलो उस परत को उतार कर एक मिट्टी के चिराग में रख लेती थी और जब भी शहर या बेटों से मिलने जाती उसका काजल बनाके आँखों में लगाती थी। मंगलो के राशन कार्ड पर हर महीने पाँच लीटर मिट्टी का तेल मिलता था जो कृष्णा ही लाता था सरकारी दुकान से, जिसका मूल्य काफी कम होता था।

'ये ले दादी, ढूँढ लाया मैं तेरी डिबिया के लिए कत्तर'-मंगलो की ओर कत्तर को बढ़ाते हुए कहा। मंगलो पतासे की कील से ढक्कन में में छेद कर रही थी और ढक्कन पर कील लगाके एक ईंट के टुकड़े से चोट मार रही थी। मंगलो ने छेद करके कृष्णा की तरफ देखा और कत्तर को पकड़ते हुए बोली - 'अरे वाह! ले आया मेरा बिटवा क त्तर'।

'जैसी डिबिया में लगती है वैसी ही लाया हूँ, पिताजी ने जब हमारी पढ़ने वाली डिबिया बनाई थी तो ये कत्तर बच गयी थी'- कत्तर की ओर इशारा करते हुए कहा।

'ले तू शीशी में मिट्टी का तेल डाल, तब तक मैं कत्तर को ढक्कन में लगाती हूँ और हाँ, अंदर से माचिस की डिब्बी भी ले आना इसे जलाने के लिए'-शीशी कृष्णा को देते हुए दादी ने कहा।

डिबिया बनके तैयार हो गयी थी और जलाके भी देख ली थी। दोनों बहुत ुश थे डिबिया बनाके, लग रहा था जैसे दोनों ने कुछ नया बना डाला हो। राधा को रोज की तरह चारा डालके मंगलो अपने लिए खाना बनाने अंदर चली गयी और कृष्णा अपने स्कूल जाने की तैयारी करने के लिए। जाते-जाते कृष्णा ने शाम में आटे का हलवा खाने का भी तय कर लिया था अपनी प्यारी दादी से आि र डिबिया बनवाने में जो मदद की थी। दोनों का ऐसे ही छुट-पुट के कामों में लगे-लगे दिन निकल जाता था। रोज की तरह आज भी शाम में स्कूल से आना और खेल-कूद करने के बाद कृष्णा और लाली डिबिया लगाके पढ़ रहे थे। कभी डिबिया को लाली अपनी ओर खींचती तो कभी कृष्णा अपनी ओर खींचता। इसी खींचा-तानी में डिबिया गिर गयी और कुछ मिट्टी का तेल भी किताब पर लग गया।

'ये क्या किया तूने? मेरी किताब पर ही तेल गिरा दिया'- डिबिया को उठाते हुए कृष्णा ने लाली पर चिल्लाते हुए कहा।

'और खींच ले डिबिया अपनी ओर!'–लाली ने जीभ निकालके चिढ़ाते हुए कहा।

कृष्णा अपनी किताब लेके वहाँ से उठके बाहर आ गया। बाहर गली में उजाला था क्योंकि मंगलो ने अपनी नई डिबिया आले में जलाके लगायी हुई थी। कृष्णा ने मुस्कुराते हुए डिबिया की तरफ देखा और जाके मंगलो के दरवाजे पर ही बैठके पढ़ने लगा। नई डिबिया की लौ मानो जैसे चाँद से सूरज बन गयी थी कि उसका उजाला चारों ओर फैल रहा था। कृष्णा ने अच्छे से अपनी पढ़ाई की और ज्यादा रात होने पर घर आके सो गया। मंगलो की नई डिबिया और राधा का साथ उसे इतना भाया कि उसने ठान ली अब यही आके पढ़ लिया करेगा और लाली भी परेशान नहीं करेगी।

धीरे–धीरे वक्त गुजरता गया और कृष्णा की परीक्षा नजदीक आने लगी। उसने बहुत मेहनत की थी आ र मंगलो की नई डिबिया उसके जीवन का हिस्सा जो बन गयी थी। कुछ महीनों में परीक्षा भी हो गयी और परिणाम भी आ गया। आ रकार कृष्णा ने अच्छे अंकों से दसवीं पास कर ली थी। ुशी में चिल्लाते हुए हाथ में स्कूल से मिली सूचना को लेके कृष्णा सीधे अपनी दोस्त दादी के पास गया।

'ये ले दादी, तेरी डिबिया ने कमाल कर दिया, मैं पास हो गया'–खुशी में चिल्लाते हुए कृष्णा ने मंगलो से कहा।

'खुश रह मेरा बिटवा, ऐसे ही तरक्की कर, खूब नाम कमा और शहर जाके बड़ा आदमी बन जा'– मंगलो ने कृष्णा को दोनों हाथों से पुचकारते हुए कहा।

'हाँ दादी मै पढ़के और बड़ा आदमी बनके एक दिन यहाँ खम्बा लगवाऊँगा, तब तू देखना तेरी डिबिया बिजली का बल्ब बन जाएगी'–हँसते हुए आत्मविश्वास के साथ कृष्णा ने कहा।

'इसी खुशी में तेरे लिए तेरा पसंदीदा आटे का हलवा बनाती हूँ, बैठे खाके जाना, लाती हूँ बनाके'–अपनी छोटी सी रसोई की तरफ बढ़ते हुए मंगलो ने कहा।

आगे की पढ़ाई के लिए कृष्णा को सड़क के किनारे बसे गाँव कमोली में अपने मामा के यहाँ जाना था। उसको बस एक ही बात बार–बार सता रही थी कि उसकी मंगलो और राधा का कौन ख्याल रखेगा। उनकी याद उसे बहुत आएगी और हलवा तो बहुत जो मंगलो उसके लिए बनाती थी। जीवन में आगे बढ़ने के लिए कृष्णा अपनी दादी और राधा से मिलके कमोली चला गया और अपना वादा भी साथ ले गया जो दादी से किया था कि गाँव में बिजली का खम्बा लगवाके मंगलो को बल्ब जलाके दिखाएगा।

कुछ साल बीत गए, मंगलो की तबियत भी नाजुक होने लगी थी। एक दिन तीन–चार सरकारी आदमी मौजी में बिजली लगाने के लिए सर्वे करने आए। गाँव में चारों ओर घूम–घूम के देख रहे थे कि कहाँ पर खम्बा लगेगा। लाली भागते हुए मंगलो के पास आयी और बोली – 'देख दादी वो बिजली वाले लोग आए हैं गाँव में और देख रहे हैं कि कहाँ पर और कितने खम्बें लगायेंगे'। 'कृष्णा आया है क्या? बिजली लगाने'– बिस्तर पर लेती मंगलो ने लाली से पूछा। हनहीं दादी, कृष्णा तो शहर में है ये तो सरकारी आदमी है बिजली वाले'– लाली ने बाहर की ओर इशारा करते हुए कहा।

कृष्णा ने पढ़–लिखकर शहर में एक अच्छी नौकरी पा ली थी और उसी ने बिजली विभाग को पत्र लिखकर मौजी गाँव में बिजली पहुँचाने का आवेदन किया था जिसकी वजह से आज गाँव में बिजली विभाग से लोग आए थे। एक महीने बाद बिजली के खम्बे पूरे गाँव में लग गए थे अब इंतजार था तो बस बिजली के छोड़े जाने का। आज के दिन गाँव में बिजली आने वाली थी और यही सुनिश्चित करने के लिए कृष्णा छुट्टी लेकर गाँव आया था। लेकिन आते ही उसे खबर लगी कि उसकी दोस्त मंगलो आज सुबह ही गुजर गयी थी।

गाँव आते ही कृष्णा सीधा मंगलो के घर आया जहाँ गाँव वाले खड़े थे। मंगलो के बेटे और परिवार मंगलो को घेरे खड़े थे जो अब जा चुकी थी। कृष्णा अपनी दादी को निहार रहा था और याद कर रहा था मंगलो के साथ बीते उसके बचपन को कि तभी खम्बों पर लगे सरकारी बल्ब जल उठे और गाँव बिजली की चमक से दमक उठा। गाँव वाले बिजली के आने पर बहुत खुश थे तो मंगलो के जाने पर दुखी। आ रकार गाँव में बिजली की रोशनी ने कदम रख दिया था पर जिसको कृष्णा दिखाना चाहता था उसको दिखा ना पाया।

'देख दादी! तेरे घर के बाहर बिजली का खम्बा लगा है और बल्ब कैसे दमक रहा है!'– कृष्णा ने आँख में आँसू लिए भरी आवाज में शांत लेटी मंगलो की ओर देखते हुए कहा।

अब कोई डिबिया उस आले में नहीं रखी जाएगी और ना ही आने वाली पीढ़ी उस डिबिया को देख पाएगी। ना ही कृष्णा के बच्चे ये समझ पाएँगे की कैसे कृष्णा ने अपनी रातें उस एक डिबिया की लौ के तले गुजरी है और आज वो सक्षम है तो सिर्फ उसकी प्यारी दोस्त मंगलो की वजह से जिसे वो प्यार से दादी कहता था और जिसका वो बिटवा था।

■■■

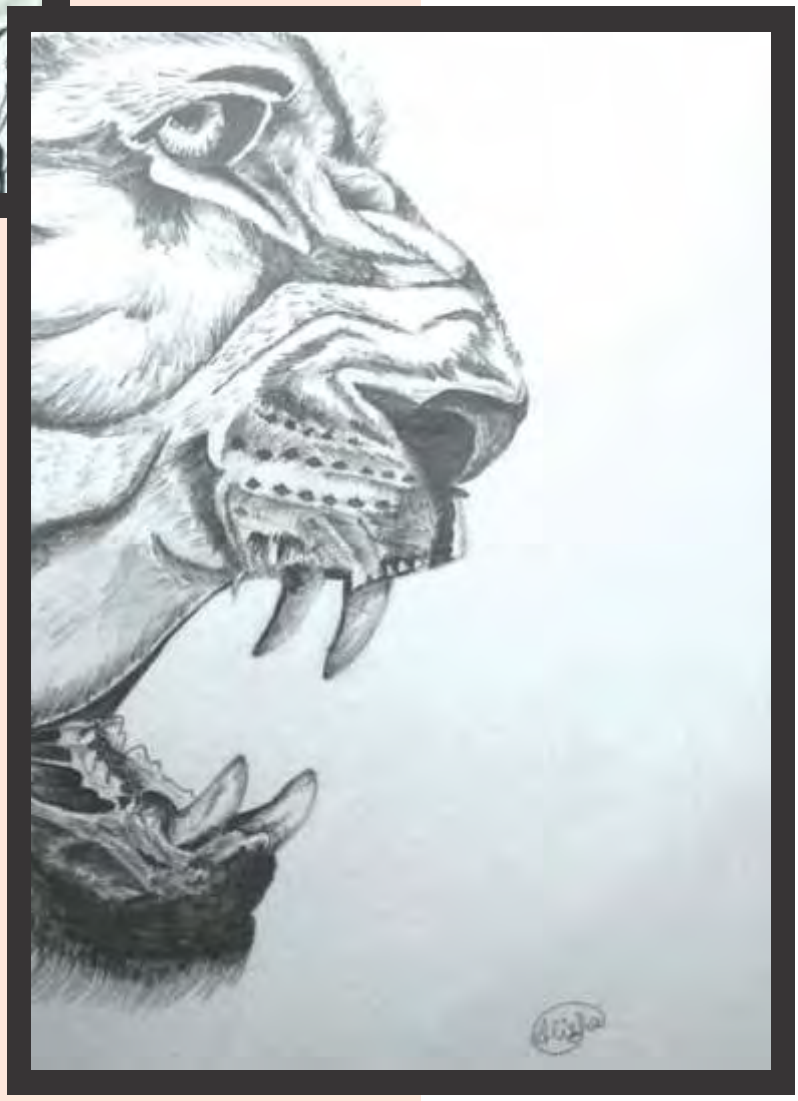

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

संस्कृतम्

संपादकमंडलम्

- डॉ. ब्रह्मप्रकाशः
- श्री अजीतकुमारः

छात्रसंपादकाः

- मधुमाला
- राहुलकुमारः
- देवव्रतः

विषयानुक्रमणिका

1 **स्वामी दयानन्दः** कृष्णा | 30
2 **वयं सर्वे भारतीयाः** दीक्षा | 31
3 **स्वतन्त्रः भारतदेशः** दीक्षा | 31
4 **मनोरथानामगतिर्न विद्यते** विकासगुप्ता | 31
5 **विश्वस्याधुनिकपर्यावरणसमस्यासु वैदिकी शिक्षा** विभूतिः आर्या | 32-33
6 **गीतम्- अद्य मे रे मित्रविवाहोऽयम् (आज मेरे याद की शादी है)** सूर्यभानयादवः | 33
7 **कस्यां प्रीतिः भवति?** शशिकान्तमिश्रः | 34
8 **मम प्रियः कविः कालिदासः** बैजुकुमारः | 34
9 **शिवपार्वती-संवादः** आशुतोषः | 35
10 **संसारमिदं युद्धक्षेत्रम्** देवव्रतः| 35
11 **सर्वेभ्यः शिक्षिकाभ्यः शिक्षकेभ्यः च समर्पितम्** कशिश शर्मा | 36
12 **कुतः शिक्षारम्भः?** पारुल | 36
13 **परोपकारः** सोयंका पटेल | 37
14 **क्षणशः कणशः चवै विद्याम् अर्थं च चिन्तयेत्** हर्षिता राय | 37
15 **एकविंशी शताब्दी समागता भारते** कौशलपतिमिश्रः | 38
16 **राजा अम्बरीशः** गोविन्दप्रकाशः | 38-39
17 **अस्माकं पर्यावरणं औद्योगिकक्रान्तिश्च** प्रवीणकुमारपीयूषः | 39
18 **हास्यकणिकाः** तारकेश्वरः| 39
19 **महात्मा हंसराजः** प्रिया द्विवेदी | 40
20 **आदर्शवाक्यानि** देवाशीषवर्म | 40-41
21 **भारतीय-गौरवम्** पिन्टूकुमारः | 41
22 **जनतन्त्रस्य वैशिष्ट्यम्** मधुमाला | 41-42
23 **हे ईश्वर! मन्न्यायोऽपेक्षितः** मधुमाला | 42
24 **अमृतं संस्कृतम्** राहुलश्यामनटराजन् | 43
25 **जीवनम् एकम् अन्वेषणम्** अभिषेकपाण्डेयः | 43
26 **'लक्ष्य-अन्वेषणम्'** संदीपजायसवालः | 44
27 **कर्त्तव्य-पालनम्** लक्ष्मणकुमारः | 44
28 **रे हृदय! कष्टम् (ऐ दिल है मुश्किल)** राहुलकुमारः | 44-45
29 **वीरचिन्त्यं भारतम्** राहुलकुमारः | 45-46-47
30 **सं वो मनांसि जानताम्** राहुलकुमारः | 47-48
31 **स्वेन स्वस्य युद्धम्** निशान्तकुमारः | 48
32 **शिक्षायाः स्वरुपम्** अतुल शुक्ला | 49-50

स्वामी दयानन्दः

— कृष्णा
स्नातकतृतीयवर्षम्, संस्कृतविशेषः

मध्यकाले नाना कुत्सितरीतयः भारतीयसमाजम् अदूषयन् जातिवादकृतं वैषम्यम्, अस्पृश्यता, धर्मकार्येषु आडम्बरः, स्त्रीणामशिक्षा, विधवानां गर्हिता स्थितिः, शिक्षायाः अव्यापकता इत्यादयः दोषाः प्राचीनसमाजे आसन् अतः अनेके दलिताः हिन्दुसमाजं तिरस्कृत्य धर्मान्तरणं स्वीकृतवन्तः। एतादृशे विषमे काले एकोनविंशशतके केचन धर्मोद्धारकाः सत्यान्वेषिणः समाजस्य वैषम्यनिवारकाः भारते वर्षे प्रादुरभवन्। तेषु नूनं स्वामी दयानन्दः विचाराणां व्यापकत्वात् समाजोद्धारणस्य संकल्पाच्च शिखर-स्थानीयः। स्वामिनः जन्म गुजरातप्रदेशस्य टंकारानामके ग्रामे 1829 तमे वर्षेऽभूत्।

बालकस्य नाम मूलशङ्करः इति कृतम्। संस्कृतशिक्षया एवाध्ययनस्यास्य प्रारम्भो जातः। कर्मकाण्डपरिवारे तादृश्येव व्यवस्था तदानीमासीत्। शिवोपासके परिवारे मूलशङ्करस्य कृते शिवरात्रिमहापर्व उद्बोधकं जातम्। रात्रिजागरणकाले मूलशङ्करेण दृष्टं यत् शङ्करस्य लिङ्गमारुह्य मूषकाः लिङ्गार्पितानि द्रव्याणि भक्षयन्ति। मूलशङ्करोऽचिन्तयत् यत् विग्रहोऽयमकिञ्चित्करः। वस्तुतः देवः प्रतिमायां नास्ति।

रात्रिजागरणं विहाय मूलशङ्करः गृहं गतः। ततः एव मूलशङ्करस्य मूर्तिपूजां प्रति अनास्था जाता। वर्षद्वयाभ्यन्तरे एव तस्य प्रियायाः स्वसुर्निधनं जातम्। ततः मूलशङ्करे वैराग्यभावः समागतः। गृहं परित्यज्य विभिन्नानां विदुषां सतां साधूनाञ्च सङ्गतौ रममाणोऽसौ मथुरायां विरजानन्दस्य प्रज्ञाचक्षुषः विदुषः समीपमगच्छत्। तस्मात् आर्षग्रन्थानामध्ययनं प्रारभत्। विरजानन्दस्य उपदेशात् वैदिकधर्मस्य प्रचारे सत्यस्य प्रसारे च स्वजीवनमसावर्पितवान्। यत्र-तत्र धर्माडम्बराणां खण्डनमपि स चकार। अनेके पण्डिताः तेन पराजिताः तस्य अनेकाः मातानुयायिनोऽभवन्।

स्त्रीशिक्षायाः विधवाविवाहस्य मूर्तिपूजाखण्डनस्य अस्पृश्यतायाः बालविवाहस्य च निवारणाय तेन महान् प्रयासः विभिन्नैः समाजोद्धारकैः सह कृतः। स्वसिद्धान्तानां सङ्कलनाय सत्यार्थप्रकाशनामकम् अमरग्रन्थं राष्ट्रभाषायां विरच्य स्वानुयायिनां स महान्तमुपकारं चकार किञ्च वेदान् प्रति सर्वेषां धर्मानुयायिनां ध्यानमाकर्षयन् स्वयं वेदभाष्याणि संस्कृतहिन्दीभाषयोः रचितवान्। प्राचीनशिक्षायां दोषान् दर्शयित्वा नवीनां शिक्षापद्धतिमसावदर्शयत् स्वसिद्धान्तानां कार्यान्वयनाय 1875 तमे वर्षे मुम्बईनगरे आर्यसमाजस्य स्थापनां कृत्वा अनुयायिनां कृते मूर्तरूपेण समाजस्य संशोधनोद्देश्यं प्रकटितवान्। सम्प्रति आर्यसमाजस्य शाखाः प्रशाखाश्च देशे विदेशेषु च प्रायेण प्रतिनगरं वर्तन्ते।

वर्त्तमान समये 32 देशेषु आर्यसमाजः निरन्तरं समाजसेवायां सेवारतः अस्ति शिक्षापद्धतौ गुरुकुलानाम् अनन्तरं डी.ए.वी. (दयानन्द एंग्लो वैदिक) विद्यालयानाञ्च समूहः स्वामिनो दयानन्दस्य मृत्योः (1883 ईस्वी) अनन्तरं प्रारब्धः तदनुयायिभिः। वर्तमानशिक्षापद्धतौ दयानन्दस्य आर्यसमाजस्य च योगदानं सदा स्मरणीयमस्ति। आधुनिकभारते समाजस्य शिक्षायाश्च महान् उद्धारकः स्वामी दयानन्दः।

आर्यसमाजनामकसंस्थायाः संस्थापनेन एतस्य प्रभूतं योगदानं भारतीयसमाजे गृह्यते। भारतवर्षे राष्ट्रीयतायाः बोधोऽपि अस्य कार्यविशेषः, समाजे अनेका दूषिताः प्रथाः खण्डयित्वा शुद्धतत्त्वज्ञानस्य प्रचारं दयानन्दः अकरोत्। स्वामी दयानन्दः महान् राष्ट्रभक्तः, देशभक्तः वेदोद्धारकश्च आसीत्।

- स्वामी समर्पणानन्दः महाभागः स्वामीदयानन्दस्य विषये उक्तवान्- दातारः तु बहवः सन्ति कश्चित् वस्त्रदाता कश्चित् धनदाता कश्चित् ज्ञानदाता परन्तु हे दयानन्दः भवान् तु अस्मै राष्ट्राय अस्य विलुप्तात्मनः दाता अस्ति। हे आत्मद! भवन्तं वारम्वारं नमामि भवन्तं वारम्वारं नमामि।
- महात्मागान्धी यदि राष्ट्रपिता अस्ति तर्हि स्वामिदयानन्दः राष्ट्रपितामहः अन्ति। पट्टाभिसीतारमैया-महोदयः सरदारपटेलः च उक्तवान्- महर्षिदयानन्दः एव स्वतन्त्रतायाः मूलम् स्थापितवान्।
- स्वराज्यशब्दस्य प्रथमोद्घोषकः महर्षिदयानन्दः एव आसीत् - लोकमान्यः तिलकः।
- सत्यं स्वध्येयं निर्मान्तु महर्षिदयानन्दं च स्वादर्शं स्वीकुर्वन्तु - स्वामी श्रद्धानन्दः।

अन्ते एवं लिखामि- इतिहासः न अवगन्तुं शक्नोति भवतः स्वरूपं यत् भवान् मानवता आसीत् अथवा मानवतायाः महाकाव्यम्।

■■■

वयं सर्वे भारतीयाः

— दीक्षा
स्नातकतृतीयवर्षम्, संस्कृतविशेषः

वयं सर्वे भारतीयाः वयं सर्वे भारतीयाः
आस्माकं लक्ष्यम् एकमेव, हा हा हा एकमेव, हो हो हो एकमेव
..... वयं सर्वे भारतीयाः-
काश्मीरस्य धरां राज्ञीं शिरोमुकुटं हिमालयम्
प्राचीनकालतः वयं एताम् रक्तेन पालयामः
देशस्य रक्षार्थं, वयं शस्त्रं धरामः
भिन्नाः-भिन्नाः ताराः सन्ति परं वयं प्रकाशिताः
आहा एकः आहो एकः वयं सर्वे भारतीयाः
मन्दिराणि गुरुद्वाराणि अपि सन्तिः अत्र, अथ मस्जिद अपि अत्र
गिरीजायाः घडियालः कुत्रापि, मुल्लायाः कुत्राचित् अजान
एकमेव अस्मदीय रामः, एकमेव अल्लाह-ताला
रङ्ग-विरङ्ग-दीपकाः वयम्, परं ज्योतिः एकः,
हा हा हा एकः, हो हो हो एकः
वयं सर्वे भारतीयाः।

स्वतन्त्रः भारतदेशः

सूर्यश्चन्द्रस्तत्र यावत्।
स्वतन्त्रभारतदेशस्तावत्।
आर्यो भवतु यवनो वा भवतु
मिलित्वा भारतदेशः।
पुरतः पादः यदा यदा शत्रोः उग्रो भारतदेशः
शान्तः भारतदेशः न भविष्यति।
आच्छादितं तमः यदा अत्र
प्रकाशो भारतदेशः।

■■■

मनोरथानामगतिर्न विद्यते

— विकासगुप्ता
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

अत्र सर्वप्रथमं विवेच्यं यत् को नाम मनोरथः का चागतिर्नाम। इच्छा आकांक्षा-स्पृहा-वाञ्छा-लिप्सा-मनोरथाः इत्यपरः प्रतिपादयति। तदनुसारं जीवने सर्वोत्कृष्टमवाप्तुमिच्छा मनोरथः। अगतिरिति शब्दस्यार्थः प्राप्यते अविषय इति। तदनुसारं सूक्तस्यास्य भावोऽयं यद्धीमतां मनोरथानां कृते न कश्चिदविषयो नाम। मल्लिनाथोऽपि कथयति-

मनोरथानां कामानामगतिरविषयो न विद्यते। न हि स्वशक्तिपर्यालोचनया कामाः प्रवर्तन्त इति भावः॥

अहं तु मन्ये यतोहि मनोरथानां कुत्राप्यगतिर्नास्ति तर्हि 'सर्वत्रधावन्ति' इत्यर्थो ग्राह्यः। मन्ये पार्वत्याः कुमारसम्भवमहाकाव्ये अयमेवाभिप्रायः ब्रह्मचारिणं सा कथयति यत्सोच्चैः पदलङ्घनोत्सुका तस्यास्तपस्तदवाप्तिसाधनमिति। प्रायः सर्वे जनाः स्वीयं स्वीयमस्तित्वमुपेक्ष्यापि सर्वोच्चपदमवाप्तुं समुत्सुका भवन्ति। अतः खलु मनोरथानामगतिर्न विद्यते। कुमारसम्भवस्य पञ्चमसर्गे महाकविः कथयति यत्-

क ईप्सितार्थं स्थिर निश्चयं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्।

के न जानन्ति यत् मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। मनसो गतिरेव कदाचिदस्मान् गोवाराज्यस्य समुद्रतटं नयति कदाचिच्च सुदूरग्रामस्य तडागे निमज्जयति अतश्च निर्बन्धमिदं मनः। मया कथ्यते यत् किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या तथैव कथनीयं यत्- किं किं न दर्शयति जीवायेदं मनः। मनः एव मनोरथस्य मूलम्। मनः कल्पमपि क्षणीकरोति क्षणं च कल्पमयम्। अशेषं हि जगदिदं मनसो एव विलासः। महोपनिषदि कथितम् यत्-

कल्पं क्षणीकरोत्यन्तः क्षणं नयति कल्पताम्। मनोविलाससंसार इति मे निश्चिता मतिः॥

पर्वते भवत्युत्तुङ्गता न गम्भीरता तथैव सिन्धौ भवति गम्भीरता न चोत्तुङ्गता। वैषम्ये सत्यपि साम्य वर्तते। अलङ्घनीयेति तथैव मन्ये यः कोऽपि जनो भवतु परं मनोरथस्य न कापि सीमा भवति।

क्वचिद् भूमौ शय्या, क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनम्, क्वचि-च्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः। क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो, मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥

किं बहुना परलोकप्रयाणकालेऽपि मनोरथानां गतिरनिर्वचनीयैव भवति। मादृशानां मनोरथानां गतिरियमेव भवतु यत्-

विश्वस्याधुनिकपर्यावरणसमस्यासु वैदिकी शिक्षा

– विभूतिः आर्या
स्नातकोत्तरप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

भारतीयऋषिपरम्परायां शुद्धपर्यावरणस्वरूपं स्वस्थं स्पष्टं चाप्नोति। प्रकृति- समाजपरिवेशविषयकं यच्चिन्तनं भारते विहितं, न तद् दुर्घटनाजन्यं अपितु आसीत् स्वस्थ-पर्यावरण-कामना-प्रसूतम्। वैदिकसाहित्ये स्वस्थपर्यावरणस्वरूपं प्राप्नोति। वैदिकी प्रार्थना प्रकृतिसन्तुलनतत्त्वान् बहुधा स्तौति। येष्वर्कस्य स्वानुकूल-प्रतापस्ययाभ्यर्थना, तथाहि पयोधरानुकूलवृष्ट्याप्तकामना **शंनो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः। (यजुर्वेद ३६/१०)** इति कृता। निगमेष्वनार्तसामाजिकपर्यावरणाय स्वस्थगृहस्थाय समाजसन्तुलनाय च **समानो मन्त्रः समितिः समानी (ऋग्वेद १०/१९२/३)** इत्युपदेशं तथा च प्रतिपदं नैतिक शिक्षां प्रददाति। यजुर्वेदस्तु ब्रह्मचारिणः चरित्रशोधनमुद्घोषयति **चरित्रांस्ते शुन्धामि (यजु० ६/१४)** श्रुत्यनुकूलदृष्टौ पर्यावरणं न भौतिकजन्यमपितु मानवीयवृत्तीनां प्रभावः एव अतः तैः मानवज्ञानकर्मेन्द्रियाणां शुद्धये आख्यातं **ओ वाक् च मे आप्यायताम् प्राणश्च मे आप्यायताम्** इति।

पर्यावरणसंघटके मुख्यतया वायुस्थलजलेति मण्डलत्रयं वर्तते, तत्रोपस्थितानि समस्तान्यपि भौतिकरासायानिकानि च तत्त्वानि सम्मिलितानि भवन्ति। एवमुक्तप्रकारेण पर्यावरणं भौतिकजैविकतत्त्वयोः सम्मेलनेन विनिर्मितमिति विज्ञायते। सर्वेऽपि जीवाः स्थलमण्डलाद्भोजनं, जलमण्डलाद्रसं, वायुमण्डलाच्च प्राणं स्वीकुर्वन्ति। अथर्ववेदानुसारं जलवायुरौषधं चैतानि त्रीणि मुख्यपर्यावरणसंघटकतत्त्वानि वर्तन्ते यथा-

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्। आपो वाता औषधयः तान्येकस्मिन् भुवनार्पितानि॥

(अथर्ववेद १८/७/१७)

अर्थात् पर्यावरणसंघटके तत्त्वविशेषेण गृह्यन्ते **आपो वारि, वाता वायुः, औषधयः वृक्षवनस्पतयश्च।** कथं वा एतेषां विनाशास्तर्हि, पूर्वोक्तं यथा हि मानवोऽयं स्वार्थपूरणाय प्रकृतिं दोग्धि, तेन हि प्रकृत्या जैविकाजैविकसंघटकतत्त्वानां सन्तुलनं विनश्यति। तदेव पर्यावरणप्रदूषणमित्युच्यते। ऋग्वेदीय अरण्यानी सूक्ते वृक्षोपयोगिता प्रदर्शिता-

उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते। उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति॥ (ऋग्वेद)

शतपथकारो वृक्षौषधीनां महत्त्वं प्रदर्शयन्नाह **औषधयो वै पशुपतिः।** ऐतरेयब्राह्मणस्तु वृक्षवनस्पतीनेव प्राणं व्याचष्टे **प्राणो वै वनस्पतिः।**

पर्यावरणसंघटकतत्त्वं **'प्राणिनां वारि जीवनम्'** यदि जलं विना जीवनं संभाव्यते तर्हि मंगलग्रहेऽपि जीवनं संभाव्यम्, यतोहि तत्र केवलं जलाभावः। वैदिकसाहित्ये जलस्तुतिः बहुधाप्राप्यते। यथा- **आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता...। यो वः शिवतमो...। तस्मा अरंगमाम्... इति। (यजुर्वेद)**

वैज्ञानिकैरनुमीयते यत् तृतीयविश्वयुद्धं जलप्राप्त्यै एव संभाव्यम्। जलाभावे सत्येव अरबदेशेषु पैट्रोल तैलादधिकं मूल्यैः जलप्राप्तिर्भवति। न केवलं जलस्याल्पतापितु जल-प्रदूषणेनापि जनविषण्णता दरीदृश्यते। ऋग्वेदे उच्यते- **आपः सर्वस्य भेजषं।** अर्थात् सर्वरोगनिवारकं जलमिति नद्यश्च लोकमातरः।

नदीनां स्रवणे न तासां मलिनत्वमपगच्छति अतः एवोच्यते वेदे- **सं सं स्रवनतु नद्यः।** सम्प्रति सम्पूर्णभारतवर्षे १५५४ जलबन्धाः सन्ति। तत्र नगराणां मलं, दूषितं जलमपि नालिकाभिः नदीष्वेव प्रवाह्यते तत्प्रतिषेधव्यं यतोहि तैत्तिरीयारण्यककारो ब्रवीति- **नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यान् ननिष्ठिवेत्। (ऐतरेय ब्राह्मण)** आपस्तम्ब-धर्मसूत्रेष्वपि- **अप्सु च न मूत्रपूरीषे न कुर्यात्तथाष्ठीवन् मैथुनयोः कर्माप्सु वर्जयेत्।**

प्रस्तुतविषये तृतीयसंघटकतत्त्वं वर्तते **'चलन्ति वायुना प्राणाः'** वायुं विना जीवनस्याशा न कथमपि संभाव्यते अतः विषयः प्रमाणान्तरमपेक्षते वायुरिति जिज्ञासितञ्चेत् वाति गच्छति स्थानाद् स्थानान्तरं प्राप्नोति इति 'वायुः' अन्यच्च गन्धयते, हिनस्ति, विनश्यतीति वायुः। जैविकसृष्टिमूलं वायुरिति शतपथकारोवाच- **यो वै प्राणः स वातः।** वैदिकसाहित्ये 'प्राण' इत्युक्त्वा वायो महनीयता स्वीकृता। **अथर्ववेदे-वातो ह प्राण उच्यते।**

किन्तु वर्तमान समये मानवकुशलप्रज्ञोद्भूता ऽत्याधुनिकाविष्कारोत्पन्नः वायुदोषः, यातायातानुसंधाने प्रयुक्तजीवाश्मतैलदहनेनोत्सर्जितधूम्रः, दैनिककर्मणि प्रयुक्तधूम्रः। अन्यप्रसाधनोपक्रमे यथा- काष्ठजन्यवस्तुसज्जायां प्रयुक्तविलयकतैलम्, उशाहादिषु प्रसन्नतायै

प्रयुक्तरासायनिकतत्त्वयुताः स्फोटकाः युद्धप्रचक्रे प्रयुक्तानि अतिविनाशकानि अस्त्रशस्त्राणि, धूम्रपानञ्चेति प्रदूषणैः वायुमण्डलमतीव प्रदूषितं सञ्जातं। १९९८ ई० तमे विश्वनिरीक्षणस्य परिणामे वायुप्रदूषणेन सर्वाधिकाः जनाः भारते अम्रियन्त। प्रतिवर्षं ६ लक्षटन कार्बनडाईऑक्साइड इति वातावरणे उत्सर्जितं भवति, यस्य ३६% भागं भूमण्डलीयतापवृद्धिजनकेन पातालदेशेनोत्सर्ज्यते। ओजोनपरतक्षये सति सूर्यस्य पराबैंगनीरश्मयः पृथ्वीमायान्ति येन चर्मरोगाः वर्धन्ते। ओजोन क्षरणेनैव पृथिव्याः तापं वर्धते। ओजोनक्षरणं सर्वप्रथमास्ट्रेलियादेशस्योपरि अभवत् अतः तत्र सर्वाधिकाः मनुष्याः चर्मरोगैः ग्रस्ताः वर्तन्ते।

उपसंहार- अथर्ववेदस्य ऋषिणा उच्यते यत्- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। अर्थात् अखिलरसमयी धरेयमस्मज्जननी, वृक्षाश्चास्याभूषणानि सुरभिश्च परितः व्याप्नोति, आपश्च सर्वरोगभेषजी। किं वयं स्वमातुरपि आभूषणानि सुरभिं आपश्च न रक्षयेम, अतो हेतोरेव दर्शं दर्शं निर्दिश्त्यते यत् यदि वादे-वादे तत्त्वबोधः करणीयस्तर्हि वृक्षवारिवायूनां रक्षणाय संकल्पो विधेयः यदि काचिन्नीतिः तर्हि वृक्षवारिवायूनां विषये, यदि विश्वबन्धुत्वं केनचिदस्ति तर्हि वृक्षवारिवायूभिः, यदि कोऽपि सत्य-सनातन-धर्मः तर्हि तत्रत्य-वृक्षवारिवायूनां संरक्षणम्।

■■■

गीतम्- अद्य मे रे मित्रविवाहोऽयम् (आज मेरे याद की शादी है)

— **सूर्यभानयादवः**
स्नातकद्वितीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

समं धनवता वा
समं निर्धनवता
दूरे भवेद्वा
समीपे वा भवेत्
परं क्वापि भूयाद् मे रे मित्रमदीयम्!
विवाहस्तु भाग्येन संयोज्यते
अद्य मे रे मित्रविवाहोऽयम्- (2)
मित्रविवाहोऽयं मे प्रियवरविवाहोऽयम्
अहा मे रे मित्रविवाहोऽयम्- (2)
भातीदं सर्वकसंसारविवाहोस्ति।
अवसरे रम्यतास्ति,
बहुशुभलग्नमुहूर्तौ
पश्य ननु किमपि सुन्दरं
वरास्यं सौम्यमेतत्।
मनो नर्तितं मुदा मे,
प्रिया संयुता प्रियेण
तथा संयोगो मिलितः
यथा चोलिका चाञ्चलम्
ओ ऽऽऽऽऽ.....
शुचिकलिकया सङ्गे ममोद्यानस्य विवाहोऽयम्।
ओ श्रृणु मे रे हृदयेज!
आसीदेषा ते युवानी
जातारम्भं ह्यधुना, नवतावकजीवनम्
कथं वाव्रज्यत एवम् अहा नर्तय अस्मान्
काले चागम्यमाने, वधूरियन् त्वान्नर्तय
कस्य वै स्वप्नानां षोडशशृङ्गारविवाहोऽयम्।

■■■

कस्यां प्रीतिः भवति?

— शशिकान्तमिश्रः
स्नातकद्वितीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

एकदा एकः पुरुषः स्वकीयं नूतनं कारयानं बहु स्नेहेन परिमार्जयित्वा प्रकाशयति स्म। तदैव तस्य चतुर्वर्षीया बालिका पाषाणखण्डेन कारयाने किमपि कर्षणमारब्धवती। कारयाने कर्षणं दृष्ट्वा पिता एतावान् क्रुद्धः अभवत् यत् सः सुतायाः हस्तं आक्षिपति। एतावद्बलेन यस्मात् बालिकायाः अङ्गुल्यः त्रुटिताः जाताः। पश्चात् चिकित्सालये पीडया क्रन्दन्ती बालिका अपृच्छत् -तात! मम अङ्गुल्यः कदा सम्यक् भविष्यन्ति? स्वस्य दोषे पश्चातापं कुर्वन् किमपि उत्तरं दातुं पिता असमर्थः जातः। सः प्रतिगच्छति अथ च कारयाने पादवृष्ट्या स्वक्रोधं प्रकटयति। पुनः तस्य दृष्टिः बालिकया कृते कर्षणे गता। यस्मात् सः स्वपुत्र्याः हस्तम् अत्रोटयत्। तत्र पुत्र्या शिलाखण्डेन **"तात अहं त्वयि प्रीणामि"** इति लिखितमासीत्।

शिक्षा- क्रोधस्य प्रीत्याश्च परिबन्धः न भवति। ध्यातव्यं वस्तुनः प्रयोगाय भवन्ति अथ च मनुष्याः प्रेम्णे भवन्ति। वस्तुतः भवति विपरीतं, जनाः वस्तुषु प्रीणन्ति जनानां च प्रयोगं कुर्वन्ति।

■■■

मम प्रियः कविः कालिदासः

— बैजुकुमारः
स्नातकद्वितीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

कालिदासः संस्कृत-साहित्यस्य महाकविः वर्तते। सः विश्वस्य महापुरुषोऽपि विद्यते। तस्य कीर्तिः न केवलं भारतवर्षे अपितु समस्ते संसारे विस्तृता अस्ति।

महाकविः कालिदासः संस्कृत-साहित्ये अतीव लोकप्रियः अस्ति। जनाः तं 'स्वस्व-प्रदेशवासी' कथयन्ति। अस्य महापुरुषस्य स्थितिकालस्य सम्बन्धे विविधानि मतानि सन्ति। केचित् तं गुप्तकाले ई० चतुर्थशताब्द्यां मन्यन्ते। अपरे विद्वांसः कथयन्ति यत् कालिदासः ई० षष्ठ-शताब्द्यां समभवत्। किन्तु विदुषां बहुमतं ई० पूर्व-प्रथम-शताब्द्यां विक्रमादित्यस्य काले स्वीकरोति। महाकवि-कालिदासेन महाकाव्यद्वयं विरचितं कुमारसम्भवं रघुवंशं च।

कुमारसम्भव-महाकाव्ये शिवपार्वत्योः विवाहस्य, कार्तिकेयोत्पत्तेः, तारकासुर-वधस्य च कथा वर्णिता अस्ति। एषा रचना मनोहरा वर्तते। अस्मिन् काव्ये कवेः मान्यता अस्ति यत् वासनाजनितं क्षणिकं च प्रेम दुःखाय एव भवति। वास्तविकस्य स्नेहस्य उपलब्धिः तु तपसा विना न सम्भवति। अस्य अपरं काव्यं रघुवंशं वर्तते। अस्य एकोनविंशतिसर्गेषु रामायणस्य कथानकम् अस्ति। अस्य भाषा अपि सरला सुबोधा च वर्तते। संस्कृत-भाषायाः अनेके ग्रन्थकाराः सुभाषितकाराश्च कालिदासं रघुवंशकार इति नाम्ना एव जानन्ति।

कालिदासस्य शैली अद्वितीया वर्तते। स नीरसम् अप्रसिद्धं च कथानकम् अपि अति रुचिकरं करोति। अनया सर्वतोमुखीप्रतिभया कालिदासस्य विश्वसाहित्ये असाधारणं स्थानं विद्यते। पाश्चात्यविद्वांसः तु अस्य कवेः तुलनां शेक्सपीयर- महाभागेन कुर्वन्ति।

कालिदासेन त्रीणि रूपकाणि अपि विरचितानि मालविकाग्निमित्रं, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलं च। अभिज्ञान-शाकुन्तलं तु सप्तांकपूर्णं श्रेष्ठं रूपकम् अस्ति। अस्मिन् दुष्यन्तस्य शकुन्तलायाश्च प्रणयस्य वियोगस्य पुनर्मिलनस्य च कथा वर्णिता वर्तते।

कालिदासेन ऋतुसंहारं मेघदूतं चेति द्वयं गीतिकाव्यम् अपि विरचितम्। मेघदूतस्य अनुकरणे तु अनेकानां दूतकाव्यानां निर्माणं जातम्। उपमा कालिदासस्य इति आभाणकम् अतीव प्रसिद्धम् अस्ति। तस्य उपमासु अनुरूपता, सरसता अपूर्वता च विद्यते। अद्यापि कालिदासस्य कृतिषु तादृगेव माधुर्यं वर्तते यादृक् पूर्वम् आसीत्। अत एव एषा भणितिः समालोचकेषु सुष्ठु विद्यते-

पुरा कवीनां गणना-प्रसंगे
कनिष्ठिकाधिष्ठित-कालिदासः।
अद्यापि तत्-तुल्य-कवेरभावात्
अनामिका सार्थवती बभूव॥

■■■

शिवपार्वती-संवादः

— आशुतोषः
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

अपर्णाख्या देवी मुदितमनसा सा भगवती,
भवानी रुद्राणी कथयति शिवानी गिरिसुता।
महादेव स्वामिन् धरतु नटवेशं पशुपते,
दिदृक्षुस्ते नृत्यं प्रिय नदतु ढक्कां भव शिव।।१।।
कथं नृत्यान्येवं कथयसि यथा त्वं भगवति,
दिदृक्षुस्त्वं नृत्यं तदपि खलु जानाम्यहमिदम्।
परं चत्वारोऽमी व्यसनविषया भाविन इह,
अतस्त्वं जानीयाः कथमपि न वश्या मम शिवे।।२।।
इदानीं वक्ष्येऽहं सकलविषयं यत् प्रभवति,
सुधाबिन्दुश्चन्द्रात्पतति यदि नृत्याम्यहमिति।
सुधास्पर्शाद्व्याघ्रस्य वसनमु जीविष्यति पुनः,
ममैको शीभ्योऽयं मरति खलु व्याघ्रे भवति च।।३।।
शिरस्तस्थूलास्या अवनिमवनौ ते फणकराः,
मयूरस्तान्सर्पान् झटिति सृदरानत्स्यति तदा।
जटातः गङ्गेयं सरति सरिदावक्ष्यति महीम्,
निजाभिर्धाराभिः क्रियत इयमद्भिः परिवृता।।४।।
यदा कण्ठान्मुण्डः पतति वसुधायां चलति वै,
तदा मुण्डान्दृष्ट्वा त्वमु हि किल नैवात्र भविता।
कथं नृत्यं विद्यापतिसुकविनेत्थं विरचितम्,
प्रयच्छाशीषं मे प्रवदति तवाशुः शिव शिवे।।५।।

■■■

संसारमिदं युद्धक्षेत्रम्

— देवव्रतः
स्नातकद्वितीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

युद्धमेव प्राणीनामस्तित्वस्य मूलमस्ति तत्र च सर्वोत्कृष्टः प्राणी मनुष्योऽस्ति। संसारेऽस्मिन् जीवनप्राप्त्यर्थं युद्धं, जीवनस्थैर्यार्थं युद्धं, आत्मसम्मानार्थं युद्धमित्यादीनि कारणान्येव संघर्ष-मूले सन्ति अत एव संसारमिदं युद्धक्षेत्रमस्ति। संसारेऽस्मिन्नेषा वार्ता तु दृष्टिगोचरतामाप्नोति यद् ये साधवः सरलाश्च ते अकालमेव दिवमाप्नुवन्ति। ममानुसारेण तैः इदं न ध्यातं यद् "छिद्यन्तिसरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः" अर्थात् यथा वनेषु ये पादपाः सरला भवन्ति तान् सर्वप्रथमं मनुष्यः स्वार्थपरो भूत्वा उपयोगाय कर्त्तयति तत्रैव च ये कुब्जाः वक्राः पादपाः ते चिरं जीवन्ति तथैवात्र संसारे सरलाः शीघ्रमेव स्वार्थपरायणदुर्जनहस्तेभ्यः उत्पीड़िताः भवन्ति। अतः सरलता तावदेव शोभते यावद् दुर्जनस्य सम्मुखीकरणं न भवेत् तदनन्तरं तु "शठे शाठ्यं समाचरेत्।"

युद्धे यथा शोकं दुःखं च परित्यज्य पुरस्सरो भाव्यमेव तथैवात्र जीवने अपि जीवन लक्ष्यप्राप्त्यर्थं सर्वदैव प्रयतितव्यम्। यथा युद्धे सह-योद्धा यदा यमग्रासो भवति तदा योद्धा क्षणमेकं शोकं कृत्वा विजयलक्ष्यं प्रति प्रवृत्तो भवति तथैवात्र जीवनेऽपि स्वजनाः दिवं गच्छन्ति परमस्माभिः योद्धामिवास्थिरता विधेया। जीवने असफलताः लभन्ते परमात्मानं कदापि न घातयेत यथा श्रेष्ठः राजा सर्वस्वं परित्यज्य आत्मानं रक्षति सः जानाति यदहं पुनः प्रयत्नं कृत्वा सर्वस्वं च पुनरवाप्स्यामि तथैवात्र उक्तञ्च "आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि"।

सर्वप्रथमं तु अस्माभिः निर्बलं नैव भाव्यं यतोहि निर्बलता शापमिवास्ति। इत्यत्र अस्मान् कश्चित् शापं न यच्छति उत वयं स्वयमेव शापग्रसिताः भवामः। एतदर्थं वयं स्वयमेव शापमुक्ताः अपि भवितुं शक्नुमः परं तदापि नैव मुक्ताः भवामः चेत् "यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः" सर्वस्वमिदं यद् सज्जनाः बलशालिनः भवेयुः तदैवोद्धारं शक्यमुक्तञ्च "वीरभोग्या वसुन्धरा।"

■■■

सर्वेभ्यः शिक्षिकाभ्यः शिक्षकेभ्यः च समर्पितम्

— कशिश शर्मा
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

किम् अस्ति तत् पदम्
यः लभते इह सम्मानम्
किम् अस्ति तत् पदम्
यः करोति देशानां निर्माणम्
किम् अस्ति तत् पदम्
यत् कुर्वन्ति सर्वे प्रणामम्

किम् अस्ति तत् पदम्
यस्य छायायां प्राप्तं ज्ञानम्
किम् अस्ति तत् पदम्
यः रचयति चरित्रं जनानाम्
'गुरुः' अस्ति अस्य पदस्य नाम
सर्वेभ्यः गुरुभ्यः शतशः प्रणामः।

■■■

कुतः शिक्षारम्भः?

— पारुल
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

प्रश्नाः सम्भवन्ति चेत् उत्तराणि अपि भवन्ति एव। शिक्षारम्भः कदा? सा का? कीदृशी च? इति प्रश्नस्य उत्तरं सहजम् अस्ति यत् शिक्षारम्भः तु बालस्य दुग्धपानात् पूर्वमेव भवति। गर्भाधानात् पूर्वमेव माता-पिता च सन्तानविषये यादृशं सङ्कल्पं कुरुतः तादृशम् एव परिणामं धारयित्वा सन्तानस्य उत्पत्तिः भवति।

मुखं शिशुना देवदत्तं लब्धम्। बुभुक्षा अपि देवदत्ता लब्धा किन्तु बुभुक्षा-निवारणं केन प्रकारेण करणीयम् इति शिशोः स्पष्टा कल्पना न भवति। शिशुः प्रयत्नपूर्वकं केवलं रोदनं करोति। ततः जननी एव महत्या प्रीत्या नवजातं शिशुं दुग्धपानं शिक्षयति। यद्यपि ततः पूर्वमपि शिशोः बहु किमपि देवदत्तं शिक्षणं प्रचलति एव। तदन्तरं व्यवस्थया अव्यवस्थया वा मातृभाषया, परिवेशभाषया वा बालशिक्षायाः शनैः शनैः विकासः भवति। या व्यवस्था भवति सा तु लोके स्वयं प्रचलति किन्तु एतया शिक्षया परिवेशिकः ग्राम्यः वा सन्तोषः भवति। एतस्य सर्वस्य शैक्षणिकविस्तारं तु शिक्षा-विशेषज्ञाः एव कुर्वन्ति। यतः शिक्षा-विशेषज्ञानां विशाला दृष्टिः महत् हितचिन्तनं च भवति अतः ते विशेषरूपेण चिन्तयन्ति हितचिन्तनं यत् शिक्षायाः विकासः बाल्यकालात् एव कथं भविष्यति? युक्ति-रीति-नीति-उपाय-आदि माध्यमेन ते शिक्षाविषये विचारयन्ति, योजयन्ति, प्रवर्तयन्ति च। अबोधाः बालाः अपि कथं बोधनीयाः, प्रेरणीयाः, प्रसादनीयाः उत्साहनीयाः चेति। अनेकान् दुरुहविषयान् बालशिक्षाविषये विचारयन्ति। यतः सर्वेषां हितं कल्याणं वा ते आरम्भे एव चिन्तयन्ति। एतादृशाः बहवः बालशिक्षाविशेषज्ञाः देशे, विदेशे च यथास्थिति बहु कार्यं कृतवन्तः। भारते वैदिक-आयुर्वेद-ग्रन्थेषु काश्यपसंहिताकारः महर्षिकश्यपः 'कौमारभृत्यम्' नामक ग्रन्थे अनेक-बालोपयोगिविषयानां वर्णनं करोति। यद्यपि एतस्य विस्तृतः परिचयो न लभ्यते तथापि ग्रन्थदर्शनेन ज्ञानं भवति यत् बालशिक्षा, बालचिकित्सा, बालक्रीडा, बालमनोविज्ञानम् इत्यादिविषये आचार्यकश्यपः दृष्टिसम्पन्नः एव यथा कश्यपसदृशाः भारतीयाः आचार्याः बालशिक्षाविशेषज्ञाः तथा बहवः वैदेशिकाः अपि सन्ति। तेषां विषये ज्ञानम्, परिचयः अनुकरणम्, अनुगमनं च आवश्यकम्? अतः तादृशानां बालशिक्षाविशेषज्ञानां विषये ज्ञानस्य प्रचारः प्रसारः अस्माभिः करणीयः।

■■■

परोपकारः

— सोयंका पटेल
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः।

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः॥

नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः।

परोपकाराय सतां विभूतयः॥

अस्मिन् संसारे परोपकारस्य अनुपमा महिमा अस्ति। अनेन गुणेन नरस्य प्रतिष्ठा वर्तते। स नरः आत्मसन्तोषं लभते। शरीरस्य शोभा चन्दनलेपनेन न, अपितु परोपकारेण भवति।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन।

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन॥

विभाति कायः खलु सज्जनानां।

परोपकारैर्न तु चन्दनेन॥

वयं सर्वत्र पश्यामः यत् प्रकृतिः अपि अस्य परोपकारस्य एवं शिक्षां प्रददाति। फलभारेण समन्विताः वृक्षाः स्वार्थाय न फलन्ति, अपितु तेषां फलानि अन्येषां कृते एव जायन्ते।

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।

परोपकाराय वहन्ति नद्यः॥

परोपकाराय दुहन्ति गावः।

परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

क्षणशः कणशः चैव विद्याम् अर्थं च चिन्तयेत्

— हर्षिता राय
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

मानवः कणानां संचयेन धनवान्, क्षणानाम् उपयोगेन च विद्यावान् भविष्यति। असंख्यानाम् क्षुद्रनदीनाम् जलकणाः सागरे मिलित्वा जलनिधिः जायते तथा हि कणानां संचयेन जनः धनी भवति क्षणानाम् उपयोगेन नरः विद्वान् भवितुम् अर्हति उक्तं चः-

जलबिन्दु-निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।

स हेतुस्सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च॥

आंग्ल-भाषायाम् एका प्रसिद्धा भणितिः अस्तिः-

रणमीयं रोमनगरम् एकस्मिन्नेव न निर्मितम् अस्ति विद्या प्राप्तौ मानवजीवनस्य प्रत्येकं क्षणं हि बहुमूल्यं वर्तते। क्षणाः एव मिलित्वा घटिकाः, घटिकाः संयुज्य होराः, संघट्यः प्रहराः, प्रहरास्तु पुनर्मिलित्वा दिवसाः भवन्ति। दिवसैरेव पुनः मासाः मासैः च वर्षाणि विधीयन्ते।

अन्यानि नष्टानि धनानि पुनः लभ्यानि।

भवन्तु कामं परं नष्टः कालः न पुनरेति॥

उक्तम् हिः-

शनैः कन्था, शनैः पन्था शनैः पर्वतलङ्घनम्।

शनैः विद्या च वित्तं च पञ्चैतानि शनैः शनैः॥

सततम् अभ्यासेनैव विद्या लभ्यते। यथा एकस्मिन् दिवसे मासस्य एकस्य भोजनं खादितुं न शक्यते। (प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् तृतीये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति)।

■■■

एकविंशी शताब्दी समागता भारते

— कौशलपतिमिश्रः
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

इयम् एक-विंशतिः शताब्दी।
पश्य सखे! आगता भारते।।
श्वानो गच्छति कारयानके
मार्जारः पर्यङ्के शेते।
किन्तु निर्धनो मानवबालः
बुभुक्षितो रोदनं विधत्ते।
अचेतनाः पाषाण-मूर्तयः
वस्त्रसज्जिताः संराजन्ते,
किन्तु दरिद्रो वृद्धोऽशक्तः
शीते वस्त्रं विना कम्पते।।
इयम् एकविंशतिः शताब्दी
पश्य सखे! आगता भारते।।
विद्यालयेषु भवनाऽभावात्
ग्रामे तरुच्छायासु बालकाः,
प्रकृतिनिर्मिते वातावरणे
किं पठन्ति जानन्तु भवन्तः।
परस्परन्ते ते कलहायन्ते
मुहुर्मुहुर् अपशब्दायन्ते,
किन्तु शिक्षकाश्चिन्तारहिताः
तरोरधस्तात् सुखं शेरते।।
इयम् एकविंशतिः शताब्दी
पश्य सखे! आगता भारते।।
क्वचित् समक्षे बैंक-लुण्ठनम्
क्वचित् बलात् बालिकापहरणम्
क्वचित् यौतकार्थं मध्याह्ने
गृहमध्ये नववधू-ज्वालनम्।
इतोधिकं का भवेद् विवक्षा?
दिनेऽप्यत्र नैवास्ति सुरक्षा,
नगरे-नगरे मानव हत्या
मत्कुण-वध-सादृश्यं भजते।।
इयम् एकविंशतिः शताब्दी
पश्य सखे! आगता भारते।।
कुतः गन्तासि कुत आयातः?
का ते जननी? कस्ते तातः?
सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्येति
वेदान्तम् अनुचिन्तय भ्रातः।
वृथा रतिः नश्वरे शरीरे
भज गोविन्दम् इत्युपदिश्य,
रेल विभागो यत्र सहर्षम्
नित्यं मुक्तिपथं दर्शयते।।
इयम् एक विंशतिः शताब्दीः
पश्य सखे! आगता भारते।।

■■■

राजा अम्बरीशः

- गोविन्दप्रकाशः
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

अम्बरीशमहाभागः सप्तद्वीपस्य अधिपतिः आसीत्। सः श्रीकृष्णस्य परमभक्तः अभवत्। तस्य चित्तं पूर्णतया श्रीकृष्णपदारविन्दयोः निरन्तरं संलग्नं भवति स्म। मुखं श्रीकृष्णस्य गुणवर्णनार्थे, करौ मन्दिर-मार्जनार्थे, कर्णौ भगवद्कथा-श्रवणार्थे आस्ताम् भगवतः सम्पूर्णां सेवां, भूपतिः आसीत्, तदापि, स्वयं करोति स्म। तस्य सर्वं ज्ञानं, कर्म, ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च भगवद्सेवार्थम् आसन्। भगवतः भोगप्रसादम् अपि सः स्वयं पाचयति स्म। अपि तु भोगरचनार्थं अपि गोधूम सः स्वयम् एव घर्षति स्म। एकदा, ग्रीष्मकाले, राजा अम्बरीशः पाचनार्थं गोधूमचूर्णं घर्षन् आसीत्। देहेन स्वेदः वहन् आसीत्। तदा, साक्षात् श्रीकृष्णः वृन्दावनबिहारी तत्र आगच्छत्। सः, राजा अम्बरीशस्य प्रेष्ठतः व्यजनं कुर्वाणः आसीत् यदा राजा अम्बरीशः पृष्ठतः अपश्यत्, यत् कः मम व्यजनसेवां कुर्वाणः अस्ति तदा सः श्रीकृष्णम् अपश्यत्। तत्पश्चात्, सः रोदितुम् आरभते। भोः भोः प्रभु! एतत् भवते न शोभते, यत् भवान् एतादृशं कार्यं करोतु भवान् तु मम स्वामी

अस्ति, मम आराध्यः अस्ति। तदा, श्रीभगवान् वदति, इदम् मह्यं न शोभते, परन्तु किम् भवते इदम् शोभते? अयं तु मम स्वाभावः एव अस्ति यत् इमे भक्ताः यथा मां भजन्ते तथा एव अहम् अपि तान् भजामि। अस्य भक्तस्य राजा अम्बरीश सम्पूर्णाः प्रजाः अपि भक्ताः सन्ति। मनुष्यस्य जीवनम् अति दुर्लभम् अस्ति। इदं जीवनं केवलम् भगवद्प्राप्त्यर्थम् अस्ति। इदं तु अवसरः अस्ति। जीवनं तु क्षणभङ्गुरम् अस्ति। अतः बुद्धिमन्तः जनाः यौवनावस्थां अथवा वृद्धावस्थां न प्रतीक्षन्ते। ते तु कुमारावस्थायाम् एव, भगवद्प्राप्ति-हेतोः साधनस्य अनुष्ठानं कुर्वन्ति। यथा धेनवः अनेकाः सन्ति, परन्तु दुग्धेन भेदः न अस्ति तथा एव ईश्वरे अपि भेद न अस्ति। सर्वे सम्प्रदायाः, ज्ञान-योग- उपासना-साधनानां गन्तव्यं केवलम् ईश्वरः अस्ति। सः तु एकः एव अस्ति। एतत् ईश्वरस्य कृपाप्रसादः यत् अस्माकं जन्म मनुष्य रूपेण अभवत्। अधुना अस्माकं कार्यम् अस्ति यत् जीवनं सफलं भवेत्।

■■■

अस्माकं पर्यावरणं औद्योगिकक्रान्तिश्च

— **प्रवीणकुमारपीयूषः**
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

अस्मान् परितः यानि पञ्चमहाभूतानि सन्ति, तेषां समवायः परिसरः वा पर्यावरणम् इति पदेन कथ्यते! सन् 1781 तमे वर्षे जेम्स-वार-महोदयः वाष्प-संयन्त्रयस्य आविष्कारं कृतवान्। तदा पश्चिमदेशानां तकनीकी, सामाजिकस्थितिः परिवर्तिता जाता। एतस्मात् कारणात् पश्चिमदेशानां जीवनशैली परिवर्तिता जाता। तत् परिवर्तनं "औद्योगिकक्रान्ति" इति नाम्ना ज्ञायते।

अनया क्रान्त्या बहूनाम् उद्योगानां स्थापना अभवत्। उद्योगस्य कृते इंधनस्य आवश्यकता भवति। ईंधने जीवश्म-ईंधन आदि ईंधनम् अस्ति। जीवाश्मईंधनप्रयोगेन धूमः अपि विशालमात्रायां निस्सरति। धूमः पर्यावरणम् अपि प्रदूषितं करोति। उद्योगस्य यः अवशिष्टः पदार्थः भवति सः जलपारितंत्रस्य अपि क्षयं करोति। विकासशीलाः देशाः बहून् उद्योगान् स्थापयित्वा पर्यावरणस्य क्षयं कृतवन्तः विकासस्य याः नीतयः आर्थिकसमृद्धिं ध्यात्वा निर्मिताः। ताः पर्यावरणस्य विनाशस्य कारणभूताः अभवन्। एताः नीतयः वायु-प्रदूषणं, जलप्रदूषणम् अपि अकुर्वन्। प्रदूषणात् शनैः-शनैः जनाः विभिन्नैः रोगैः ग्रसिताः जाताः।

1970 तमे वर्षे विकासस्य बहवः विशेषज्ञाः अवदन्। केवलम् आर्थिक-विकास एव मानवजीवनस्य विकासः नास्ति। पर्यावरणसंरक्षणमपि एकं महत्त्वपूर्णं कार्यम् अस्ति। पर्यावरणसंरक्षणमपि विकासः एव भवति। तत्पश्चात् अनेकानि आन्दोलनानि बभूवुः। "सुन्दर-लाल-बहुगुणा" इति नाम्नः नेता उत्तराखण्डे प्रदेशे "चिपकोआन्दोलनम्" अकरोत्। ग्रामस्य जनाः आन्दोलनस्य कृते सुन्दरलालस्य नेतृत्वे एकत्रिताः अभवन्। तत्पश्चात् अस्माकं पर्यावरणं सुरक्षितमस्ति। पृथिव्यां जीवनस्य मूलाय पञ्च- महाभूतानि वर्तन्ते। अस्माभिः एतेषां संरक्षणम् करणीयम्।

■■■

हास्यकणिकाः

— **तारकेश्वरः**
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

1. पतिः दुग्धं पीत्वा- "अद्यकीदृशं दुग्धम्?"
   पत्नी केसरसमाप्तिः जाता, तदा अहं भवतः "विमल-पान-मसाला" स्थापितवती। "अस्य कणे कणे केसर वर्तते।"
2. बसस्थानके एका युवती प्रतीक्षमाणा आसीत्। एकः युवकः यथा सा दत्तावधाना भवेत् तथा तस्याः समीपं द्विचक्रिकायानेन गतः। किञ्चित् दूरं गत्वा पुनः तस्या समीपं प्रत्यागतः सः युवतीं पृष्टवान्। "अभिज्ञातः अहम्?"
   युवती- न
   युवकः- त्वत्पुरतः तु प्रस्थितः अहं निमेष मात्रपूर्वम्!!
3. युवकः- त्वम् अतीव लावण्यवती असि।
   युवती- ओह प्रियकर!
   युवकः- त्वं तु अप्सरा इव असि
   युवती- सत्यं वा?
   युवकः- आम्।
   युवती- किं कुर्वन् असि अधुना?
   युवकः- परिहासम्।
4. पतिः- अद्य तादृशं चायपेयं निर्मातु यस्य पानेन देहः दोलयेत्।
   पत्नी- वयं महिषदुग्धं प्राप्नुमः न तु नागदुग्धम्।

■■■

महात्मा हंसराजः

— प्रिया द्विवेदी
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

महात्माहंसराजस्य जन्म 19 अप्रैल 1864 तमे वर्षे पंजाब-राज्ये 'होशियारपुरजनपदे' बजवारा इति नामके ग्रामे अभवत्। तस्य पितुः नाम चुन्नीलालः आसीत्। सः एकः साधारणव्यक्तिः आसीत्। महात्माहंसराज बाल्यकालात् एव अतीव कुशाग्रबुद्धिः आसीत्। यदा हंसराजः द्वादशवर्षीयः आसीत् तदैव तस्य पितुः देहावसानः अभवत्। तस्य प्रारम्भिकी शिक्षा स्थानीय-विद्यालयात् एव अभवत्। स्नातकशिक्षां सः 'गवर्नमेंट् कॉलेज ऑफ लाहौर' इति महाविद्यालये पूर्णम् अकरोत्। 1954 तमे वर्षे यदा सः स्वभ्रातृ-गृहे लाहौरनगरे अवसत् तदा सः स्वामिदयानन्दस्य सत्सङ्गे गमनस्य अवसरं प्राप्तवान्। स्वामिदयानन्दस्य प्रवचनस्य हंसराजे अतीव स्पष्टप्रभावम् अभवत्। सः समाजस्य सेवाम् एव स्वजीवनस्य लक्ष्यं निर्मितवान्। सः रिक्तसमये निर्धनानाम् कृते पत्राणि पठनं लेखनं च अकुर्वन्।

बाल्यकालात् एव शिक्षायाः कृते तस्य अनुरागः आसीत्। सः शिक्षायाः प्रसारस्य कृते बहूनि कार्याणि कर्तुम् इच्छति स्म, किन्तु एतस्य कार्यस्य कृते धनस्यापि आवश्यकता आसीत्। तस्य आर्थिकी स्थितिः सम्यक् नासीत्। किन्तु द्वाविंशतिवर्षस्य अवस्थायाम् सः डी.ए.वी.विद्यालये प्रधानाचार्यस्य पदे भूत्वा सेवाम् अकरोत्। किन्तु एतस्य कृते सः किमपि वेतनं न स्वीकृतवान्। जीवनस्य शेषकाले सः समाजसेवकस्य रूपे कार्यं कृतवान्।

लाला हंसराजः पंजाबराज्यस्य आर्यसमाजस्य एकः प्रमुखः नेता शिक्षाविद् च आसीत्। पुरातनवैदिकसंस्कृत्याः प्रसाराय सः महर्षि दयानन्दस्य स्मृत्याम् स्वसहकर्मी गुरुदत्तेन सह मिलित्वा 'दयानन्दएंग्लोवैदिक' इति विद्यालयं स्थापितवान्। पञ्चविंशति वर्षेभ्य सः तस्य विद्यालयस्य अग्रे अवैतनिक रूपेण प्राचार्यस्य रूपे कार्यं कृत्वान्।

एवं सः स्वजीवनं राष्ट्रकृते समर्पितवान्। राष्ट्रीयध्वजे अशोक चक्रस्य श्रेयः अपि सः एव लभते। 14 नवम्बर 1938 तमे वर्षे सः शरीरं विहाय ब्रह्मलोके अगच्छत्।

अद्य अनेकानि शिक्षणसंस्थानानि तस्य एव नाम्नि चलन्ति। यथा- हंसराज महिला महाविद्यालयः, जालन्धर् नगरे। हंसराजमहाविद्यालयः, दिल्लीराज्ये इत्यादयः। तस्य महत्त्वपूर्ण-योगदानेन संपूर्णे भारतवर्षे 750 डी.ए.वी. इति संस्थायाः विद्यालयाः महाविद्यालयाः च सन्ति। **'नमामः महात्महंसराजम्।'**

■■■

आदर्शवाक्यानि

— देवाशीषवर्म
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

राष्ट्रेऽस्मिन् भारतवर्षे विविधाः संस्थाः प्रचलन्ति, प्रत्येकमपि संस्थायाः किमप्येकं ध्येयवाक्यं भवत्येव हर्षस्यविषयोऽयं यत् अस्मिन् भारतवर्षे अनेकेषु सर्वकारीयेषु गैरसर्वकारीयेषु संस्थासु बहुलरूपेण संस्कृतध्येयवाक्यानि परिदृश्यन्ते, तेषु केषाञ्चन वाक्यानां सङ्कलनमात्राधः क्रियते-

क्रम	संस्था	आदर्शवाक्यानि
1.	भारतशासनम्'	सत्यमेव जयते'
2.	डाकघर-विभागः'	अहर्निशं सेवामहे'
3.	दूरदर्शनम्'	सत्यं शिवं सुन्दरम्'
4.	आकाशवाणी	'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'
5.	भारतीयथल-सेना	'वीरभोग्या वसुन्धरा'
6.	भारतीयजल-सेना	'शन्नो वरुणः'
7.	भारतीयवायु-सेना	'नभः स्पृशं दीप्तम्'
8.	दिल्लीपुलिस	'सेवा अस्माकं धर्मः'
9.	दिल्लीनगरनिगमः	'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

10.	भारतीयजीवनबीमानिगमः	'योगक्षेमं वहाम्यहम्'
11.	विश्वसंगठनम	'वसुधैव कुटुम्बकम्'
12.	दिल्ली-संस्कृत-अकादमी	'सरस्वती श्रुतिमहो महोयताम्'
13.	राष्ट्रीय-संस्कृत-संस्थानम	'योऽनुचानः स नो महान्'
14.	दिल्ली-विश्वविद्यालयः	'निष्ठा धृतिः सत्यम्'
15.	केन्द्रिय-विद्यालय-संगठनम्	'तत् त्वं पूषन अपावृणु'
16.	लोक-सभा	'धर्मचक्र प्रवर्तनाय'
17.	अखिल-भारतीय-आयुर्विज्ञान संस्था	'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'
18.	उच्चतम-न्यायालय	'यतो धर्मस्ततो जयः'
19.	आई.एन.एस. दिल्ली	'सर्वतो जयम् इच्छामि'
20.	विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोगः	'ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये'
21.	हंसराजमहाविद्यालय	'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

■■■

भारतीय-गौरवम्

— पिन्टूकुमारः
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

शुभा भाषा प्रिया पुण्या, महामान्या विभातीयम्।
महत्त्वं घोषयत्युच्चैः, पुराणं देववाणीयम्।।
यदीयं गौरवं वेदा सदा गायन्ति सा नूनम्।
अपूर्वा सर्वथा सेव्या, सुधां संवर्षयन्तीयम्।।
पुराणानि प्रशस्तानि, मनोहारीणि भद्राणि।
तथा परमात्म-विज्ञानं, स्वकोषे संवहन्तीयम्।
सर्वभाषातिरम्याणि, चमत्कारीणि भव्यानी।
रसापूर्णानि काव्यानि, समानं सन्धरन्तीयम्।।
यदीयाया हि गीतायाः, समो नो भूतले ग्रन्थः।
अतुल्यं गौरवं स्वीयं, सदेत्थं प्राप्नुवन्तीयम्।।
शुभं रामायणं काव्यं, विचित्रं भारतं भव्यम्।
समेषां भूतये पुंसां, धरण्यां दर्शयन्तीयम्।।
प्राकृतं योग-सम्बन्धं, रहस्यञ्चात्मनो गुह्यम्।
वदन्तञ्चातिगम्भीरं दर्शनौघं धरन्तीयम्।।
परा विद्यापरा विद्या, स्वरूपं विज्ञविज्ञेयम्।
अविद्यायास्तथा रूपं, मुदा विद्योतयन्तीयम।।
शुभं मानं शुभं दानं, शुभं ध्यानं शुभं ज्ञानम्।
शुभं यच्चास्ति विज्ञानं सदा तद् बोधयन्तीयम्।।
विरोधं सर्वभाषाणापाकर्तुं क्षमा सौम्या।
समासं विश्व-भाषाणां, प्रसूभावं भजन्तीयम्।।
महादेवं सदैवैवं, वयं याचामहे नित्यम्।
भवेत् सर्वत्र साम्मान्या, भद्रभावं भरन्तीयम्।।

■■■

जनतन्त्रस्य वैशिष्ट्यम्

— मधुमाला
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

जनतन्त्रम् इत्यस्य अपरः नाम लोकतन्त्रम् अस्ति। जनतन्त्रस्य शाब्दिकार्थः जनतायाः हस्तेषु शक्तिः अधिकारः वा। 'जनतन्त्रम्' अयं शब्दः भारतदेशस्य कृते नूतनः नास्ति। ऋग्वैदिककाले सभासमिति-गण-परिषदः इत्याख्याः संस्थाः लोकतन्त्रस्य प्रतिनिधित्वं कृतवन्तः। ऋग्वेदे 'गणतन्त्रम्' इति शब्दः चत्वारिंशत्वारं अथर्ववेदे नववारं च दृश्यते। वार्ता अस्ति यत् देशेऽस्मिन् भूयमानैः अपि अस्माभिः अस्यैव देशस्य तन्त्रस्य विरोधः क्रियते अथवा तद्विषये टिप्पणी क्रियते इदमेव सिध्यति यत् इदं तन्त्रम् सर्वोच्चम् अस्ति नहि इदं कस्यचिदपि अभिव्यक्तेः हानेः कारणम्।

भारतीय-जनतन्त्रम् सर्वोत्तमं मन्यते। अस्य कारणम् अस्ति यत् भारतदेशे मताधिकारप्राप्तजनानां संख्या सर्वाधिका अस्ति। धारा 325, 326 अनुसारेण प्रत्येकं वयस्कः नागरिकः यदि मूढः अपराधी वा नास्ति चेत् तस्य पार्श्वे मताधिकारः अस्ति। अनेन कारणेन ये शासकाः भवन्ति ते जनताभ्यः उत्तरदायकाः भवन्ति एवं च जनतायाः राष्ट्रस्य वा विकासः चिन्तनीयः भवति यतो हि

अग्रिमनिर्वाचने सैव जनता कञ्चन अन्यं शासकं वा चेतुं अर्हति। एवं च स्वदायित्वस्य स्वपदस्य च रक्षणाय अपि जनतायाः विकासः चिन्तनीयः।

अन्येषु तन्त्रेषु पदं तावत् व्यक्तिकेन्द्रितं भवति। येन च सर्वोच्च-पदेषु कश्चन वंशः अथवा केचन विशिष्टाः एवं दायित्वं निर्वक्ष्यन्ति। परं च अस्माकं लोकतन्त्रे तु कश्चन अति सामान्योऽपि भारतस्य सर्वोच्चं पदं अलंकर्तुं प्रभवति। अस्माकं राष्ट्रस्य सर्वोच्चं पदं भवति राष्ट्रपतिरित्यस्य किन्तु जनता तावती शक्तिशालिनी भवति या तत् पदं अलंकुर्वते राष्ट्रपतिमहोदयाय महाभियोगं कर्तुम् अर्हति।

भारतस्य संविधानस्य कुञ्जिका अस्य संविधानस्य प्रस्तावना वर्तते। तत्र इत्थं प्रतीज्ञायते- "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। इति उक्तम्। ज्ञायते यत् जनतासु एव कश्चन शासकः वर्तते। एवं च जनता शासकयोः अभेदान्वयः। जनतैव कञ्चन शासकं चिनोति। अतः सर्वमपि प्रभुत्वं जनतासु एव भवति।

बहुविधाः आक्षेपाः भवन्ति यत् राष्ट्रेऽस्मिन् अनेके बुभुक्षिताः, रोगपीडिताः, दीनाः च प्रतिदिनं मृत्युं प्राप्नुवन्ति शासकः तेषां कृते किमपि न करोति। यतो हि तादृशा एव केचन तस्मादेव स्थलात् उत्थाय स्वकर्मणा तपसा बलेन च इदानीम् महान्तः विख्याताः सुप्रसिद्धाः वैज्ञानिकाः जाताः। अतः तन्त्रकारणेन एव सर्वमपि दुखं वर्तते इति न वक्तव्यम्। तत्र अस्माकम् अकर्मण्यताऽपि कारणीभूता भवति। लोकतन्त्रेऽस्मिन् यस्य बहुमतं भवति तस्य एव विचारः अंगीकरणीयो भवति। एवं च अस्मिन्नेव विषये भीमरावअम्बेडकरोऽपि उक्तवान् यत्-नहि किञ्चित् तन्त्रं दुष्टं साधुः वा भवति तन्त्रं तु तदपालयित्रीणाम् अनुसारमेव भवति। उक्तमपि च-

गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति।
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः॥
हे ईश्वर! मन्न्यायोऽपेक्षितः

■■■

हे ईश्वर! मन्न्यायोऽपेक्षितः

- **मधुमाला**
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

सर्वेभ्यो विधिस्सुदृढः समानोऽपेक्षितः
हे ईश्वर! मन्न्यायोऽपेक्षितः
कलङ्कस्ते न्यायालये मे वधो
वद काचिद्धारा मे वधे
पिता मे हन्ता हन्त्री माता मम
चिकित्सकप्रवक्तारौ हन्तारौ च हन्ता त्वं
मरणाय प्रयतन्ते समे समाजिनः माम्
प्रतिमुखमस्ति मत्कृते बधकसम्मुखं
विधिस्ते न्याय्यो मे न कुरुते
कश्चिदधिवक्ता मेऽभियोगो न स्वीकुरुते
एतदर्थम् स्वाभियोगं स्वयमेव स्वीकुर्वे
स्वाभियोगात् व्यवहृतिं कुर्वे
सर्वे क्रन्दन्ति स्ववधेऽहमपि क्रन्द्रिष्यामि
स्वाक्षिभ्यामहं लौहं विद्रविष्यामि
सुखेन न निद्रापयामि **हन्तॄनू** रोदयिष्यामि
विजीर्णेऽपि कस्यचिद् कल्पनायां आयास्यामि
गीतकारस्य गीतं भूत्वा सर्वान् मानवान् विबोधयिष्यामि
गाँधीदयानन्दौ इव कञ्चिच्छूरवीरं कल्पयिष्यामि।
क्वाहमेकाकिनी क्व सर्वे भूताः
ममाबोधबालायाः शत्रुः सर्वे भूताः
दोषः को मम किमभियोगं दण्डयति
संसार इहागमनपूर्वमेव मे संसारं प्रणश्यति
यस्मै पुत्राय कामयसे यदि स एव म्रियते
तर्हि किं कुरुष्व पुत्रेणामुना सह त्वमपि खलु म्रियस्व
किमभियोगाय अमुष्याः बालायाः वर्तते यं जगत्यागमनेऽवरुन्धे।

■■■

अमृतं संस्कृतम्

— राहुलश्यामनटराजन्
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

विश्वस्य सर्वासु भाषासु संस्कृतभाषा प्राचीनतमा भाषाऽस्ति भाषेयं बहुना भाषाणां जननी मता। अस्यामेव भाषायां ज्ञान-विज्ञानयोः निधि सुरक्षितः अस्ति। यथोक्तम्-भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा च।

अस्या भाषायाः वैज्ञानिकतां विचार्य एव सङ्गणकविशेषज्ञाः कथयन्ति यत् संस्कृतम् एव सङ्गणकस्य कृते सर्वोत्तमा भाषा विद्यते। अस्याः भाषायाः वाङ्मयं वेदैः पुराणैः नीतिशास्त्रैः चिकित्साशास्त्रादिभिश्च समृद्धम् अस्ति। कालिदाससदृशानां विश्वकवीनां काव्यसौन्दर्यम् अनुपमम् चाणक्यरचितम् अर्थशास्त्रं जगति प्रसिद्धमस्ति। गणितशास्त्रे शून्यस्य प्रतिपादनं सर्वप्रथमं भास्कराचार्यः सिद्धान्तशिरोमणिः अकरोत्। चिकित्साशास्त्रे चरकसुश्रुतयोः योगदानं विश्वप्रसिद्धम्। संस्कृते यानि अन्यानि शास्त्राणि विद्यन्ते, तेषु खगोलविज्ञानं, वास्तुशास्त्रम्, सङ्गीतशास्त्रम्, रसायनशास्त्रम्, ज्योतिष्शास्त्रं विमानशास्त्रं च उल्लेखनीयम्।

संस्कृतस्य इदं वैशिष्ट्यं वर्तते। यत् अस्याः वाङ्मये विद्यमानाः सूक्तयः अभ्युदयाय प्रेरयन्ति। वरिष्ठान् कनिष्ठान् च प्रति अस्माभिः कथं व्यवहर्तव्यम्। इत्यस्य व्यवहारिकं ज्ञानं संस्कृतमेव ददाति। भारत-सर्वकारस्य विभिन्नेषु विभागेषु संस्कृतस्य सूक्तयः ध्येयवाक्यरूपेण स्वीकृताः सन्ति। भारतसर्वकारस्य राजचिह्ने प्रयुक्तं सूक्तिः सत्यमेव जयते सर्वे जानन्ति। एवमेव राष्ट्रीयशैक्षिकानुसन्धान प्रशिक्षणपरिषदः ध्येय-वाक्यं 'विद्ययामृतमश्नुते' वर्तते।

केचन कथयन्ति यत् संस्कृतभाषायां केवलम् धार्मिक साहित्यं वर्तते एषा धारणा समीचीना नास्ति। संस्कृतग्रन्थेषु मानवजीवनस्य विविधाः विषयाः समाविष्टाः सन्ति। अस्याः भाषायाः शास्त्रेषु महापुरुषाणां मतिः उत्तमजनानां धृतिः सामान्यजनानां जीवनपद्धतिः च वर्णिता अस्ति अतः अस्माभिः संस्कृतम् अवश्यमेव पठनीयं येन मनुष्यस्य समाजस्य च परिष्कारः भवेत्। उक्तञ्च-

अमृतं संस्कृतं मित्र
सरलं सरसं वचः।
एकतामूलकं राष्ट्रे
ज्ञानविज्ञान पोषकम्॥

■■■

जीवनम् एकम् अन्वेषणम्

— अभिषेकपाण्डेयः
स्नातकप्रथमवर्षम् संस्कृतविशेषः

जीवनम् अन्धकारमिव यस्मिन् प्रकाशस्य काऽपि आवश्यकता नास्ति॥

यदि भवन्तः इत्थं चिन्तयन्ति तर्हि ईश्वरप्रदत्ते अस्मिन् जीवने भवान् स्वप्नमिव आगच्छति तर्हि अस्मिन् किमपि अशुद्धता नास्ति परम् अस्मिन् अन्धकारे इव जीवने भवान् चिन्तयति कोऽपि मार्गं प्रदर्शयति चेत् अहम् अधुना-अस्मिन् संसारे जेष्यामि। भो मित्र! यदि पथिकस्य प्रतीक्षां करिष्यति तदा त्वम् लक्ष्यं कदा प्राप्स्यसि। अत्यधिकम् अभवत् प्रतीक्षा, इदानीम् अनेन शब्देन सह अग्रे।

यदि एकवारं निश्चयं कृतं तर्हि केवलं अग्रे चल, अग्रे चल। परन्तु एवं सदा स्मरणे भवेत् यत् यदा पराजयस्य आशङ्का आगमिष्यति तदा पराजयस्य चिन्तां विहाय युद्धं करोतु। यदि भवन्तः स्वयं पराजयस्योपरि विजयं प्राप्नुयु तर्हि तदा अवगच्छेत् यत् भवान् लक्ष्यस्य समीपेऽस्ति। किमपि नूतनं कार्यं करणीयम् प्रयासं करणीयम् जीवनस्य प्रयोगशालायां केवलं प्रयासः करणीयः। अरे बान्धवाः। स्वस्य कृते तु सर्वाणि जीवन्ति, कदाचित् अपरस्य कृते जीवित्वा पश्यन्तु!!! कदाचित् मातृभूमेः कृते जीवित्वा पश्यन्तु अत्र कियुत् आनन्दः अनुभूयते।

■■■

'लक्ष्य-अन्वेषणम्'

— संदीपजायसवालः
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

त्वं किमर्थं हताशः असि, त्वं किमर्थं निराशः असि।
उतिष्ठ जागृहि लक्ष्यं त्वया एव अन्वेषणीयम्।।
त्वं न तिष्ठ कदापि, नैव भव श्रान्तः कदापि।
कुर्यात् दृढ़निश्चयं, लक्ष्यं त्वया एव अन्वेषणीयम्।।
त्वं किमर्थं हतोत्साहितः असि, विश्वस्य मायाजालेन प्रभावितः।
उतिष्ठ जागृहि निजगुणं पश्यतु, लक्ष्यं त्वया एव अन्वेषणीया।।
त्वं किमर्थं चकितः असि, त्वं किमर्थं समस्यायाम् असि।
उतिष्ठ जागृहि निजसाहसं वर्धतां, लक्ष्यं त्वया एव अन्वेषणीयम्।।
त्वं किमर्थं हताशः असि, त्वं किमर्थं निराशः असि।
उतिष्ठ जागृहि लक्ष्यं त्वया एव अन्वेषणीयम्।।

■■■

कर्त्तव्य-पालनम्

— लक्ष्मणकुमारः
स्नातकद्वितीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

कर्त्तव्यपालनम् एव जीवस्य जीवनम् उच्यते। स्वकर्त्तव्यपालनं मानव-जीवनस्य आधारशिला अस्ति। जगतः प्रत्येकं वस्तु स्वस्य कर्त्तव्यस्य पालनं करोति। सूर्यः सर्वदा प्रकाशं ददाति, वायुर्वाति, वृक्षाः प्राणिनां कृते सदा मधुराणि फलानि ददति, पृथ्वी च प्राणिमात्रं धारयति जगति सर्वे स्वकर्त्तव्यस्य पालनं कुर्वन्ति। यथा- भगवद्गीतायां भगवता कृष्णेन प्रतिपादितम् एतद् यद् मनुष्यैः संसारे अवश्यमेव कर्म कर्त्तव्यम्। अकर्मणि कदापि प्रवृत्तिः न कर्त्तव्याः। स्वकर्तव्येन एव जीवनं चलति।

यथा- **नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते, न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।**

एवमेव सर्वत्र कर्त्तव्यस्य उपदेशः अस्ति। संसारे अकर्त्तव्यः मनुष्यस्य महाशत्रुः वर्तते, येन मनुष्यः सर्वदा दुःखं कष्टं वा प्राप्नोति। अतः मनुष्येन सदा स्वकर्त्तव्य-पालनं अवश्यं करणीयम्, कर्त्तव्येन विना किमपि न प्राप्नोति। तथैव उक्तम्-

उद्यमेन हि सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः। न हि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

स्वकर्त्तव्य-पालनेन एव निर्धनाः धनिनः भवन्ति, अज्ञानिनः ज्ञानवन्तः अकुशलाः कुशलाः, निर्बलाः सबलाः, दीनाः हीनाश्च सर्वविधसमृद्धाः भवन्ति। कर्त्तव्यपालनभावनैयैव महाराजः शिविः कपोतरक्षणार्थं स्वमांसं श्येनाय प्रादात्। महर्षिः दयानन्दः विवेकानन्दः महात्मा गांधी च भारतभूमिहिताय एव स्वजीवनं दत्तवन्तः, अतः सर्वैरपि सदा सर्वदा स्वकर्त्तव्य-पालनं करणीयम्।

रे हृदय! कष्टम् (ऐ दिल है मुश्किल)

— राहुलकुमारः
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

त्वं यात्रा मम
त्वमेव मे लक्ष्यम्
त्वां विना जीवनम्
रे हृदय! कष्टम्
त्वं मम ईशः
त्वमेव प्रार्थनायाम्
त्वां विना जीवनम्
रे हृदय! कष्टम्
मां परीक्षते तवानुपस्थितिः
त्वाम् अपेक्षते मे प्रति असिद्धिः
संकल्पोऽस्ति मम
भवेयं ते योग्यम्
त्वां विना जीवनम्
रे हृदय! कष्टम्
आत्मा अयं मम
शरीरम् इदं मम
तावत् मम नाभूत्

यावत् अभूत् तव
त्वं याम् अदाः सा पीड़ा एव किल
त्वत् हि लब्धा तु
पुरस्कारम् अस्ति मे
मम नभः पश्यति तव भूमिम्
त्वाम् अपेक्षते मे प्रति असिद्धिः
भूमौ तु न खलु
तु नभसि मां मिल
त्वां विना जीवनम्
रे हृदय! कष्टम्
मन्ये अहं तव उपस्थितेः
इदं जीवनं पूर्णं मे
जीवनस्य अपरं नान्यदुपायम्
न हृदयं मम जानीते

त्वां कीयद् बहु प्रीणामि
वरं तु भवेःत्वमज्ञ
न अपेक्षते खलु गन्तव्यम्
एकपक्षीया यात्रा मम
यात्रा शोभनास्ति लक्ष्यतः
त्वाम् अपेक्षते मे प्रति असिद्धिः
अपूर्णं भूत्वापि
मे अस्ति प्रेम पूर्णम्
त्वां विना जीवनम्
रे हृदय! कष्टम्
चलचित्रम् : ए दिल है मुश्किल
अनुदितं गीतम् : ए दिल है मुश्किल

■■■

वीरचिन्त्यं भारतम्

— राहुलकुमारः
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

भारतमातरं नत्वा नाटकं रचयाम्यहम्।
स्मरामि वीरपुत्रान् तान् यैः देशो मम रक्षितः॥

(नान्द्यन्ते)

ततः प्रविशति नट्या सह सूत्रधारः

सूत्रधारः- आर्ये! स्वर्गे इदं किं जायमानम् अस्ति। अस्माकं देशस्य स्वतन्त्रतायोद्धारः शोकमुद्रायां किमर्थम् उपविष्टाः सन्तिः।

नटी - आर्य! ईदृशं नैराश्यं स्वर्गे मया कदापि न दृष्टम्।

(नेपथ्ये)

हा! हा! हा!

सूत्रधारः- आर्ये! त्वयि विज्ञापनव्यस्ते कः एषः हसति?

नटी - (नेपथ्यम् अवलोक्य) अये! एषः ब्रिटिशाधिकारी किमर्थं हसन् अस्ति?

(इति निष्क्रान्तौ) (प्रस्तावना)

प्रथमं दृश्यम्
(स्वर्गे)

ब्रिटिशाधिकारी- (हसन्) हा! हा! हा! हा! पश्यन्तु। भवन्तः पश्यन्तु। स्वकीयस्य भारतदेशस्य स्थितिं पश्यन्तु। यस्य कृते भवन्तः आजीवनं संघर्षं कृतवन्तः, कष्टम् अनुभूतवन्तः, प्राणमपि त्यक्तवन्तः। तं भारतम् अद्य पश्यन्तु, देशस्य च अस्य युवकान् पश्यन्तु।

द्वितीयं दृश्यम्
(मदिरालये)

युवानः - (मदिराकूपीं गृहीत्वा, मदिरां पिबन्तः, गीतं गायन्तः)
करिष्यामि मदिरापानम्। करिष्यामि मदिरापानम्...

युवत्यः - (धूमपानं कुर्वत्यः, गीतं गायन्त्यः)
मम प्रेम प्रेम प्रेम धूमपानम्...

तृतीयं दृश्यम्
(चायपानस्थले)

प्रथमो युवकः – (समाचारपत्रं पठन्) पश्यतु भ्रातः। अयं पाकिस्तानदेशः पुनः छलेन अस्माकं सैनिकान् हतवान्। अयं खलः सर्वदा प्रपञ्चं करोति।

द्वितीयो युवकः – (समाचारपत्रं पठन्) अरे भ्रातः। किमर्थं व्यर्थसमाचारं पठति। सैनिकाः मरणाय एव जीवन्ति। अस्माभिः किं करणीयम्। अद्य चत्वारः मृताः जाताः। श्वः इतोऽपि पञ्च मरिष्यन्ति। का नो हानिः?

त्यजतु तत्, पठतु एतत्। विराटः इटलीदेशं गत्वा अनुष्कया सह विवाहं कृतवान्।

प्रथमो युवकः – (स्वकीयं समाचारपत्रं क्षिपन्) कुत्र कुत्र माम् अपि दर्शयतु।

चतुर्थं दृश्यम्
एकस्मिन् स्थले

(केचन युवकाः दुर्घटनाकारणात् अर्धमृतस्य जनस्य सहायतां न कुर्वन्ति अपितु स्वदूरवारण्या चित्राणि आकर्षन्ति अपि च सामाजिकसूचनातन्त्रे एवं विषयं प्रसारयति) 'दुःखम् अनुभवामि दुर्घटनास्थले'...

(केचन हिन्दूयुवकाः मुस्लिमयुवकाश्च परस्परं धर्मनाम्ना कलहं कुर्वन्ति)।

एकः – एते धूर्त्ताः,

अपरः – शत्रवः एते अस्माकम्

पञ्चमं दृश्यम्
(स्वर्गे)

ब्रिटिशाधिकारी – दृष्टवन्तः सर्वे! स्वकीयां स्वर्णचटकाम्। किं जातम् आजादः? अद्य भवतः वज्रवक्षः सकुञ्चितः दृश्यते। रानीलक्ष्मीबाई! कुत्र अस्ति भवत्याः मुखतेजः? भगताश्फाकौ! अद्य भवतोः तीक्ष्णनेत्रभृकुटयः न दृश्यन्ते।

चन्द्रशेखराजादः – अहं तु स्तब्धोऽस्मि सम्प्रति। किं वा वदेयम्। न अवगम्यते मया किम् एते ते जनाः सन्ति येषां कृते वयम् आत्मानं हतवन्तः। किन्तु अद्य मया यत् दृश्यते तदनन्तरं तु स्वर्गेऽपि आत्मान् हन्तुम् इच्छामि।

रानीलक्ष्मीबाई – मम मुखतेजः अस्माकं देशस्य युवतीभिः मदिरायां निमज्जितम्। अहं बाल्यकालात् बहु वारं युष्मान् पराजितवती। दुःखम् इदमस्ति अहं रणक्षेत्रे पुरुषतुल्या आसम् किन्तु इदानीं युवत्यः मदिरालये पुरुषतल्याः सञ्जाताः। रक्तं प्रवाहितं अस्माभिः ताभिः मदिरा प्रवाहिता। ताः स्वातन्त्र्यं विस्मृत्य स्वच्छन्दीभूत्वा पतिताः। अधिकाराणां विषये तु वदन्ति स्वीयं कर्त्तव्यं न अवगच्छन्ति एताः।

भगतसिंहः – तीक्ष्णनेत्रभृकुटीं त्यजतु धर्मनाम्नि कलहं कुर्वतः एतान् युवकान् दर्शनात् वरं यद् अहं नेत्रहीनोऽभविष्यम्। अहं सिखोऽस्मि अश्फाकः इस्लामधर्मानुयायी च अस्ति। वयं कदापि धर्मकारणात् रक्तरञ्जिताः न आस्म। अस्माकं रक्तं तु भारतमातुः समर्पितम् आसीत्।

अश्फाक-उल्लाह-खानः – अद्य पृच्छतु एतान् कोऽस्ति भगतसिंहः? ते वदन्ति वयं केवलं हनीसिंहं जानीमः। पृच्छतु एतान् कोऽस्ति अश्फाक-उल्लाह-खानः? ते वदन्ति वयं केवलं सलामानखानं जानीमः।

ततः प्रविशति नारदमुनिः

नारदमुनिः – नारायण! नारायण! हे भारतमातुः वीरसुपुत्राः! पृथिव्याम् आजीवनं कष्टम् अनुभूय अपि ईदृशाः चिन्तिताः भवन्तः कदापि न दृष्टाः। स्वर्गे भूत्वापि ईदृशं हतस्वभावं कथम्?

चन्द्रशेखरआजाद –हे देव! भवान् तु त्रिलोकेषु भ्रमति। भवता तु सर्वं ज्ञायते यद् अद्य अस्माकं देशस्य युवकानां च कीदृशी स्थितिः जाता। अधुना भवान् एव किमपि करोतु। कथमपि उपायं वदतु।

नारदमुनिः – नारायण! नारायण! हे देशभक्ताः! युवा तु कस्यापि देशस्य मेरुदण्डः भवति। अपि च भारते पञ्चषष्टिप्रतिशतजनसंख्या युवावर्गे

आयाति। किन्तु यत्र युवानः मदिरापानं धूमपानं च कुर्वन्ति। अहर्निशं धर्मनाम्नि कलहं कुर्वन्ति। स्वदेशं प्रति कृतज्ञाः न सन्ति। यत्र महापुरुषाणां शवयात्रायां सहस्रयुवानः चलन्ति किन्तु तेषां पथं केचन एव अनुसरन्ति। यत्र यूनाम् ईदृशी व्यथा तर्हि अस्य देशस्य का कथा?

भगतसिंहः – हे भगवान्! किम् अस्माकं जीवनाहुतिः व्यर्था गाता। किमपि तु भवेद् अस्याः समस्यायाः उपायम्।

नारदमुनिः – एकमेव उपायम् अस्ति।

भगतसिंहः – किम्? किम्? शीघ्रं वदन्तु।

नारदमुनिः – उपायम् अस्ति। शिक्षाप्रणाल्यां संवर्धनम्। भारतस्य कृते आवश्यकम् अस्ति सः स्वकीयं मूलं प्रतिगच्छेत्। येन कारणेन सः विश्वगुरुः आसीत्। भारतीया शिक्षानीतिः ध्वस्ता जाता। शिक्षायां नैतिकता व्यावहारिकता च शनैः शनैः समाप्यते। अस्माकं समृद्धपरम्परायाः पठनं कुत्रापि न भवति। अस्माकं गौरवपूर्णेतिहासस्य पाठनं भवेत्। भारते तु शस्त्रशास्त्रयोः परम्परा आसीत्। मनोशारीरिकं स्वास्थ्यर्थं छात्रान् उद्धर्तुं पाठ्यक्रे योगासनं भवेत्। येन मनोगतविकाराः न उद्भवेयुः। यूनां रक्षणाय देशस्य अस्य विकासाय च मूल्याधारिता शिक्षा भवेत्। अस्माकं संस्कृतिः मूल्याधारिता संस्कृतिः आसीत्। स्वकीयानि मूल्यानि अवाप्य एव देशम् इदं भारतं स्वकीयं गुरुस्थानं प्राप्तु शक्नोति।

(भरतवाक्यम्)

नो भारतस्य देशस्य संस्कृतिः संस्कृताश्रिता।
त्राणाय संस्कृतेर्शिक्षा हि मूल्याधारिता भवेत्॥
इति सर्वे निष्क्रान्ताः

■■■

सं वो मनांसि जानताम्

— राहुलकुमारः
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

कश्चन युवा आसीत्। स दिल्लीविश्वविद्यालये पठति स्म। स मूलतः उड़ीसाराज्यतः आसीत्। स उच्चशिक्षायै देहलीम् आगच्छत्। स देहल्यां स्वकीयस्य महाविद्यालयस्य समीपे एकस्मिन प्रकोष्ठे निवसति स्म। स एकवारं डेंगूपीड़ितः जातः। तस्य स्थितिः सम्यक् नासीत्। स बहु पीड़ायाम् आसीत्। तदा तस्य मित्राणि तम् एम्स-चिकित्सालये नीतवन्तः। पितरौ सूचनां प्राप्य शीघ्रमेव उड़ीसातः दिल्लीम् आगतवन्तौ। ततः परं स्वकीयस्य पुत्रस्य उपचारं कारितवन्तौ। स बालकः षड्दिवसान् यावत् चिकित्सालये आसीत्। तदनन्तरं तस्य पितरौ तं तस्यावासे आनीतवन्तौ। अग्रिमदिवसे प्रातःकाले अल्पाहारानन्तरं तस्य पितरौ औषधस्य क्रयणार्थं एम्स-चिकित्सालये गतवन्तौ। स युवा प्रकोष्ठे एकाकी शय्यायां विश्राम्यन् आसीत्। किञ्चित् कालानन्तरं स दूरदर्शनस्य पिञ्जं नून्नवान्। दूरदर्शने समाचारः प्रचलन् आसीत्। तं समाचारं दृष्टवा क्षणेनैव तस्य शरीरे वेगेन कम्पनम् आरब्धम्।

दूरदर्शने समाचार आसीत् यत् एम्स-चिकित्सालये आतंकवादिनः आक्रमणं कृतवन्तः। पञ्चाशत् जनाः हताः शतशश्च व्रणिताः सन्ति। ते आतंकवादिनः अधुनापि चिकित्सालये सन्ति। ते अष्टसंख्याकाः सन्ति। इमं वृत्तान्तं श्रुत्वा तस्य मनसि सन्देहानां सागरमिव उत्थितम्, यतोहि तस्य परिजनौ अपि तत्रैव आस्ताम्। स शीघ्रमेव पितरौ दूरवाणीम् अकरोत्। किन्तु कोऽपि दूरवाणीं न उत्थापितवान्। स लिखितसन्देशम् अपि प्रेषितवान् किन्तु किमपि प्रत्युत्तरं न आगतम्। तदा स क्रन्दनम् आरब्धवान्। पित्रोः प्राणसंकटं कल्पयित्वा स दुःखसागरे पतितः जातः। तत्क्षणे तस्य पीड़ा असहनीया आसीत्। अकस्मात् प्रकोष्ठस्य विद्युतप्रवाहोऽवरुद्धः। विद्युद्भावे स प्रकोष्ठः अन्धकारे निमग्नः। किन्तु मनोशारीरिकस्वास्थ्यकारणात् स वातायनम् उद्घाटयितुम् असमर्थः आसीत्। सहसा स कस्यापि हसनं श्रुतवान्। तत्र कोऽपि जनः आसीत्। तेन कृष्णवस्त्रं धारितम् आसीत्, अन्धकारवशात् तस्य मुखं न दृश्यते स्म। युवकः रुद्धस्वरेण पृष्टवान् 'कोऽस्ति तत्र? हसन् अस्ति?'

मम पित्रोः प्राणाः संकटे सन्ति तथापि भवान् हसन् अस्ति। स जनः उक्तवान् "तर्हि किम् अभवत् एम्स-चिकित्सालये पञ्चाशत् जनाः हताः जाताः। द्वौ इतोऽपि मरिष्यतः। का चिन्ता? मृतसंख्या

पञ्चाशत्तः द्विपञ्चाशत् भविष्यति।" युवा क्रोधेन अवदत् "भवादृशः निर्दयीजनः मया कदापि न दृष्टः। तौ केवल द्वे जने न स्तः। तौ मम पितरौ स्तः। ताभ्याम् अहं पालितः पोषितश्च अस्मि। ताभ्यामेव मम न्यूनाधिकाः सर्वाः आवश्यकताः परिपूरिताः भवन्ति। तयोः अनुपस्थितौ मम भ्रातृणां किं भविष्यति? वयं तु अनाथाः भविष्यामः। भवतः कृते संख्याद्वयम् अस्ति। मम कृते तु तौ मम संसारभूतौ स्तः।" स जनः हसन् अब्रवीत् "हा हा हा हा, भवतः स्मरणे किञ्चित् आयाति किम्? भवान् स एव खलु यः केभ्यश्चित् दिनेभ्यः पूर्वं समाचारपत्रं पठन् स्वमित्रम् अब्रूत यद् केदारनाथतीर्थस्थले आगते महाप्रलये द्विसहस्रपरिमिताः जनाः मृताः जाताः। तदा संख्या सहस्रतः द्विसहस्रं कृता भवता। तदा तु भवान् संवेदनहीनः आसीत्।

यदा विजयदशमीपर्वणि अमृतसरनगरे रेलदुर्घटना अभवत्। तदापि भवतः मनसि किमपि कष्टं न अजायत। यदा केरलप्रदेशे जलप्रलयः आगतः आसीत् तदापि भवान् भावशून्यः आसीत्। केवलं धनदानम् एव भवता कृतम् आसीत्। तस्य जनस्य अनने वचनेन तस्य पीड़ा इतोऽपि वर्धिता जाता। तथापि स पुनः अकथयत् तौ मम पितरौ स्तः। किन्तु तान् जनान् तु अहं जानामि एव न। स जनः उक्तवान् ये जनाः प्रलये दुर्घटनायां वा मृताः जाताः तेऽपि केषाञ्चन मातरः पितरश्च। किन्तु भवान् कदापि तेषां विषये न अचिन्तयत्। भवता यत् महत् दुःखम् अधुना अनुभूयते। तेषां गृहजनैः अपि अनुभूतं किल। किन्तु भवान् समाचारपत्रं पठित्वा एवमेव मा चिन्तयतु यत् मृताः जनाः अपराः कदाचित् ते अपराः स्वीयाः अपि भवितुं शक्नुवन्ति। अस्माकं तु शास्त्राण्यपि भणन्ति-

अयं निज परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

तच्छ्रुत्वा स युवा विचारसागरे निमग्नः। तत्क्षणं अलार्मघट्याः ध्वनि तस्य कर्णविवरेषु प्रविष्टा। पुनः स स्वमातुः ध्वनिं श्रुतवान् यत् पुत्र उत्तिष्ठ! उत्तिष्ठ पुत्र! प्रातःकाल जातः। मया अल्पहारः निर्मीतः। अल्पहारं कृत्वा औषधं स्वीकरोतु। अद्य सायंकाले अस्माभिः रेलयानेंन उड़ीसाराज्यं गन्तव्यम् अस्ति। मातुः एभिः वचोभिः स पुनः जीवितः जातः। इदं तस्य स्वप्नम् आसीत्, अतः स बहुप्रसन्नः जातः। परं स्वप्नेन अनेन तेन युवकेन जीवनस्य महती शिक्षा प्राप्ता। अनेन जागरणेन तस्य जीवने महती जागरुकता समुद्भूता। तेन निजस्य-परस्य च भेदः सम्यक् निरीक्षितः निरीक्ष्य समाप्तश्च। तस्य मनसि समानतायाः महती भावना समुद्भूता। याश्च प्रोक्ताः प्राक्काले ऋग्वेदे-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥

■■■

स्वेन स्वस्य युद्धम्

– **निशान्तकुमारः**
स्नातकतृतीयवर्षम् संस्कृतविशेषः

स्वप्नमिदं नहि यदि तर्हि किम्?
स्वस्मिन्नेव स्वं दृश्ये
किन्तु तथापि कदापि
न द्रष्टुं शक्नोमि स्वस्मिन् स्वम्
हास्यमिदं नहि यदि तर्हि किम्?
स्वप्नेष्वपि भवामि स्वप्नसंसारे सदा
स्वप्नानि तानि भविष्यन्ति सत्यानि
जीवामि इत्यस्मिन्नेव स्वप्ने
स्वप्नलहरीयं नहि यदि तर्हि किम्?

निर्माय स्वेनैव स्वं,
स्वेनैव स्वं मार्जयित्वा,
भवाम्यन्वितस्स्वस्मिन्नेवा
स्वेन स्वस्य युद्धं नहि तर्हि किम्?
जागरितुमिच्छुः परन्तु,
भयमस्ति यत् विनश्यति सर्वम्
करवाणि चेत् किमिदानीम्
स्वेनैव भूत्वा लुप्तोऽम्
प्राप्स्यामि स्वन्नात्रापि संशयः।

■■■

शिक्षाया: स्वरूपम्

— अतुल शुक्ला
स्नातकोत्तर द्वितीयवर्षम्:

मनुष्य: भगवत: सर्वश्रेष्ठ: कृतिरस्ति । समग्रे प्राणिसंसारे मानवमहत्ता शिक्षयैव वर्तते । तथा तु भूतले अनेके प्राणिन: निवसन्ति। परं ते समेऽपि शिक्षा विहीना एव। शिक्षां विना मनुष्य: पशुवत् भवति। शिक्षा एव विद्यारूपेण गृहीता। तत्र उक्तमपि यत्- **विद्याविहीन: पशु:** । शिक्षा एका निरन्तरं प्रचाल्यमाना प्रक्रिया वर्तते। मनुष्य: जन्मन: आरभ्य मृत्युपर्यन्तं शिक्षाग्रहणं करोति। अथ **सा विद्या या विमुक्तये** आसीत् ऋषिसमय: । शिक्षा एव अपगुणान् वारयित्वा सद्गुणानां सञ्चार: अन्त:करणे करोति।

शिक्ष् विद्योपादाने धातुना **गुरोश्च हल:** इति पाणिनीयसूत्रेण **'अ'** प्रत्यये सति **शिक्षा** शब्द: निष्पद्यते । **शिक्षयति या सा शिक्षा । शिक्ष्यते यया सा शिक्षा ।** इति परिभाषा शिक्षाया: विषये प्राप्यते। शिक्षाया: आंग्लभाषायां पदं भवति **Education** इति । **Education** इति शब्द: लेटिन् भाषाया: Educatum, Educare तथा Educere इति पदत्रयस्याधारेणोत्पन्न: इति विदुषां मतम्। तत्र शिक्षाया: प्रमुखं कार्यं भवति- अन्तर्निहितशक्तिनां बहिरानयनमिति।

शिक्षाया: परिभाषा-

१. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। ***(श्रीमद्भगवद्गीता)***

२. मानवान्तर्निहितपूर्णताया अभिव्यक्तिरेव शिक्षा । ***(स्वामिविवेकानन्द:)***

३. स्वस्थे शरीरे स्वस्थं मन: नाम शिक्षा। ***(अरिस्तातिल्)***

४. शिक्षा व्यक्ते: तासां सर्वासां योग्यतानां विकासोऽस्ति याभि: सा स्ववातावरणे परिनियन्त्रणस्य क्षमतां प्राप्नोति स्वसम्भावनाञ्च पूरयति। ***(जान् डीवी)***

स्वस्य सर्वांगीणविकासाय प्राप्यमाणां शिक्षां मनुष्य: परिवारात्, समाजात्, मित्रेभ्य:, प्रकृत्या:, विद्यालयाच्च प्राप्नोति । मनुष्य: प्रतिक्षणं किमपि न किमपि अवश्यं शिक्षति। परन्तु सा शिक्षा अपि त्रिविधा दीयते। **औपचारिकशिक्षा**

यत्र निर्धारितस्थाने निर्धारितसमये निर्धारितेभ्य: छात्रेभ्य: निर्धारितै: अध्यापकै: निश्चितपाठ्यक्रमानुसारं निश्चितविषयस्य शिक्षा प्रदीयते तन्नाम औपचारिकशिक्षा। तद्यथा- विद्यालय:।

अनौपचारिकशिक्षा

अनिश्चितस्थाने अनिश्चितसमये अनिश्चितेभ्य: छात्रेभ्य: अनिश्चितै: अध्यापकै: अनिश्चितपाठ्यक्रमानुसारं अनिश्चितविषयस्य शिक्षा प्रदीयते तन्नाम अनौपचारिकशिक्षेति। तद्यथा- शिविराणि।

निरोपचारिकशिक्षा

यत: छात्रा: स्वयं पठित्वा दृष्ट्वा वा स्वत एव शिक्षां प्राप्नुवन्ति तन्नाम निरोपचारिकशिक्षेति । तद्यथा- अन्तर्जालेन, समाचारपत्रेण, पत्रिकाभ्य:।

शिक्षाया: प्रक्रिया

शिक्षाप्रक्रियाया: विषयं चर्चयामस्तर्हि दृष्टिपथमायाति यत् बहूनां शिक्षाशास्त्रिणां बहुविधमतानि सन्ति। यथा- **१. एडम्स**महोदय: शिक्षां द्विमुखीप्रक्रियारूपेण मन्यते । एष: गुरुं शिष्यं च प्रमुखत्वेनाङ्गीकरोति।

२. जानडीविमहोदय: शिक्षां त्रिमुखीप्रक्रियारूपेण स्वीकरोति। एष: छात्रं शिक्षकं पाठ्यक्रमञ्चाङ्गीकरोति।

३. आधुनिकशिक्षाशास्त्रिण: शिक्षां बहुमुखीप्रक्रियारूपेण स्वीकुर्वन्ति।

शिक्षाया: बहुनि कार्याणि सन्ति । तत्र मानवजीवनपरिप्रेक्ष्ये शिक्षाया: कार्याणि पश्यामश्चेदायान्ति केचन प्रमुखा: बिन्दव: । ते यथा-

1. सुनागरिकनिर्माणम् ।
2. व्यक्तित्वविकास: ।
3. सच्चरित्रनिर्माणम् ।
4. मूलप्रवृत्तिनां नियन्त्रणम् ।
5. जन्मजातशक्तीनां प्रगतिशीलविकास: ।
6. आवश्यकताया: पूर्ति: ।
7. आत्मनिर्भरताया: प्राप्ति: ।
8. व्यावहारिकज्ञानप्राप्ति: ।
9. वातावरणेन सह सामञ्जस्यस्थापनम् ।
10. जीवनार्थं सन्नद्धीकरणम् ।

प्राचीनकाले एषा शिक्षा गुरुकुलेषु दीयते स्म । तत्र बटव: गुरुकुले एव स्थित्वा गुरुणां सेवां कुर्वन्त: स्वावलम्बी भूत्वा सर्वाणि आवश्यकानि कार्याणि कुर्वन्त: शिक्षां प्राप्नुवन्ति स्म । ते भिक्षाटनं कृत्वा भोजनं कुर्वन्ति स्म । ते यावत् शिक्षासमाप्तिर्न भवति स्म तावत् गृहं न यान्ति स्म । शिक्षाया: आरम्भे तेषां यज्ञोपवितसंस्कार:, वेदारम्भसंस्कारश्च भवति स्म । पुन: शिक्षाया: समाप्त्यनन्तरं तेषां समावर्त्तनसंस्कार: कृत्वा तेभ्य: गृहस्थाश्रमं प्रति गन्तुमधिकारा: दीयन्ते स्म । तस्मिन् काले शास्त्रैस्साकं शस्त्राणामपि शिक्षा दीयते स्म । ते गुरुणामाज्ञां सर्वोपरि मन्यन्ते स्म । तस्मिन् काले नैतिकमूल्यानां, सामाजिकमूल्यानां, राष्ट्रियमूल्यानाञ्चापि शिक्षा प्रदीयते स्म । तदा आसीत्

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता: ॥

राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि ॥

मित्रेण चक्षुषा समीक्षामहे ॥

एतादृशी शिक्षा । या: शिक्षा: प्राप्य मनुष्य: स्वोन्नत्यै: साकं समाजस्य राष्ट्रस्य वा उन्नतिमपि कर्तुं सन्नद्धो भवति स्म । परन्तु अस्मिन् काले मानव: लार्डमेकाले पद्धतौ शिक्षां प्राप्य केवलं साक्षर: तु जात: परं मूल्यानामभाव: दरीदृश्यते । मनुष्य: पाश्चात्यसंस्कृतिमाश्रित्य स्वस्य मूल्यानि नश्यति । एतदर्थमेव साम्प्रतिके समाजे दृश्यन्ते अनर्थकानि दुश्चरितानि वा कार्याणि ।

अत: अस्माभि: सा शिक्षा प्राचीनशिक्षा गुरुकुलपद्धतिर्वा आश्रयणीया: । तदैवास्माकं समाजस्य राष्ट्रस्य वा उन्नतिं भवितुमर्हति ।

■■■

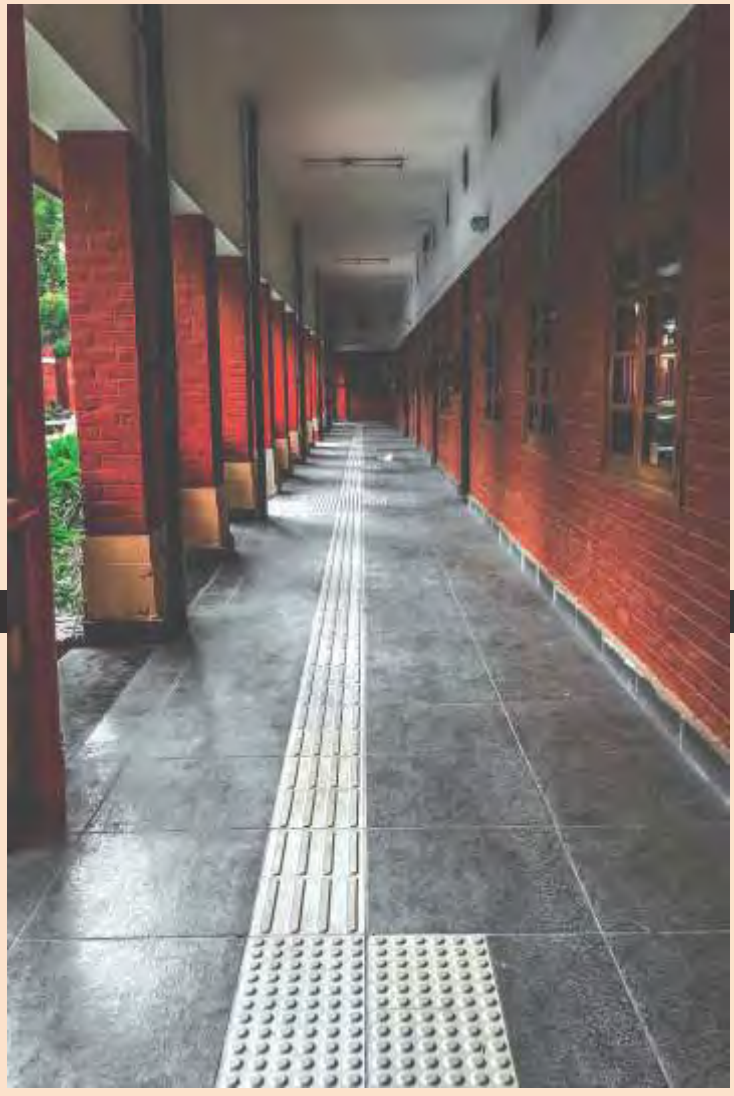

Krishna Chaitanya
B.A. (Prog) I Year

Taruneshwar Nikhil

Minal Thawre

Abhishek Nayak
B.A. (H) History III Year

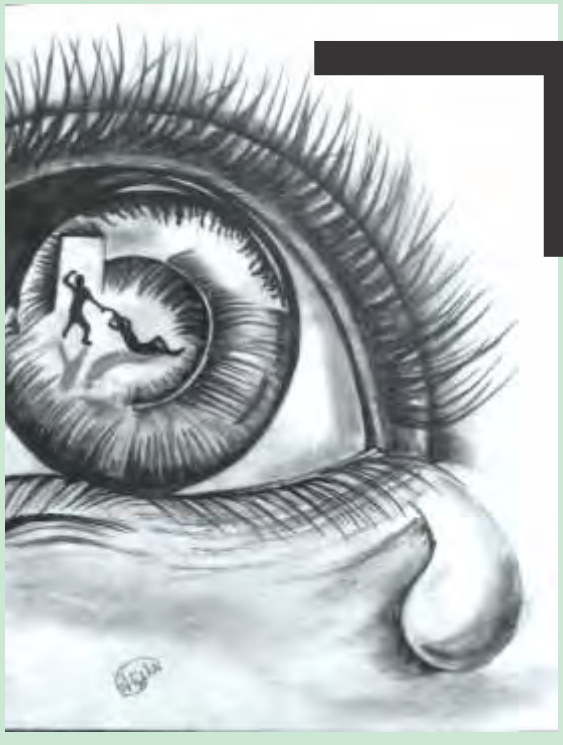

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

English

Editorial Board

- Dr. Prachee Dewri
- Ms. Ruchi Sharma

Student Editors

- Anshuman Yadav
- Smriti Verma
- Srishti Gupta
- Ujjwal Parashar
- Areeb Ahmad
- Shipra
- Soumya Vats,

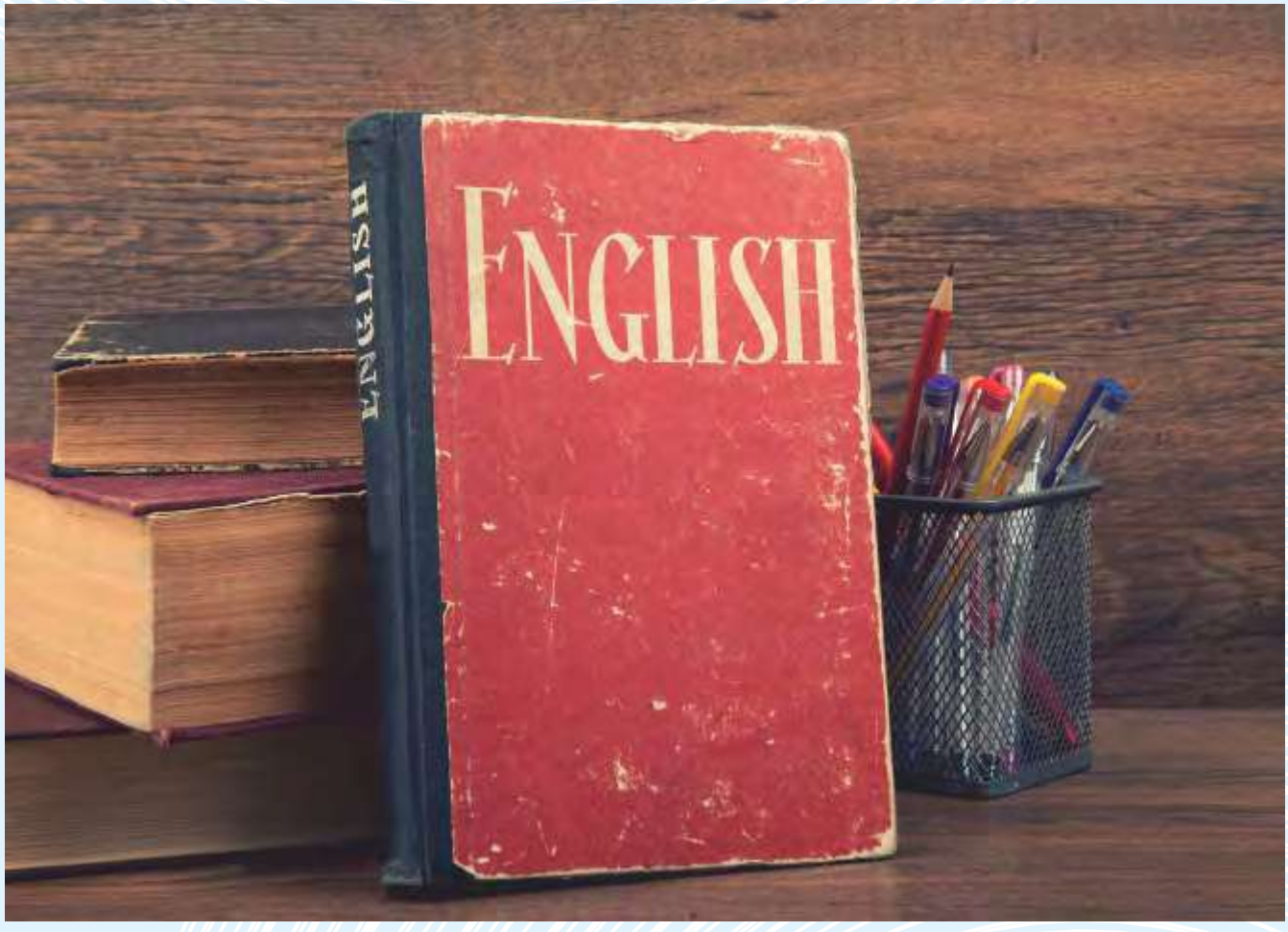

Index

1 Autumn through the eyes of a mountain girl | 56

2 The Art of Mathematics | 56

3 Dhing | 57-58

4 Gandhi's Ideas on the Need of Value Based Education : An Ethical Reflection | 58-59-60-61-62-63

5 Endnotes | 63-64

6 History: A Vernacular? | 65

7 Those Days are Gone | 66

8 Images from Childhood | 66

9 Starfall | 67

10 Timeless Visions | 67

11 Five tips to a healthy heart | 67

12 Lovers | 68

13 White Hair Wisdom | 68

Autumn through the eyes of a mountain girl

डाली डाली फूलों की, तुझको बुलाए ऐ मुसाफ़िर मेरे उत्तराखंड में।

– **Aarshiya**
Geology Hons Ist Year

Being a mountain girl, a 'pahadan' (to be precise) was never a worrisome issue for me. Indeed it was quite enchanting you see, for I got to witness the fall in its most beautiful form, in the hills of Tehri Garhwal and Kumaon. It is so strange that Autumn is so beautiful, yet everything is dying. You may gain all the experience life has to offer, but I promise you that every Autumn you experience here will be novel, and the most enchanting, even on reliving it a thousand times.

So have you witnessed a fall, so fine?

Well, I have!

The scented cool breeze carrying the smell of sandalwood and burning pines. The white gigantic cherry blossom tree swooning over the terrace of my cottage, with its blossoms gently falling over the floor, decorating it like a wedding altar. The tinkling music of the rustling leaves gushing past my ears. The soft touch of the cold evening breeze on my bare skin, sends shivers down my spine. As the night sky takes over the dusk, I rush to the beautiful stream nearby behind a row of tall pines, maples and chestnuts.

Under the stelliferous sky, I sit on the wooden deck, and stare at these magnificent mountains--the Blue mountains which are a little darker than the night sky. The Purnima moon shines to its fullest, the Himalayan range seems to be draped with a shroud of silver, and everything holds its breath.

■■■

The Art of Mathematics

- Ekansh Jauhari
Mathematics Hons IInd Year

Mathematics is one of the finest of all visual and imaginary art forms. It is more than just a subject. Mathematicians are fine artists, just like dancers, musicians, painters, etc. Since maths is an art form, it is expected to be beautiful and that is exactly where it illuminates itself. Unlike other artists, a mathematician is an abstract expressionist who has innumerable tools, and infinitely large canvas to present his art. Any form of representation of mathematical arts is insufficient, because its beauty can't be seen, heard or felt but only observed and imagined. Interestingly, for others, it's nothing more than a few formulae. Arguably, Euler's Identity is the most beautifully formulated art, which is mathematically equivalent to the Mona Lisa painting.

The art of Mathematics can be extended as a language beyond the realm of words. There are huge markets for mathematics, where Physicists, Chemists, Economists, etc borrow its beauty to beautify their own domains. Math constructs thoughts, and has been pushing human civilisations ahead with its logics and implications since ages. This infinite charm makes mathematics very interesting and tempting, due to which mathematicians tend to immerse themselves in this endless art forever.

■■■

DHING

- Ishani Ahmed Saikia
English Hons IIIrd Year

As the tires tore unwillingly from the smooth gravelled highway, the pits and mounds of the ochre track jostled them into the past. A past passed on, inherited by Nur from her father. A past they made pilgrimage to for the last three years, one in reverence and the other in resignation. Nur noted very early on that inheritance left little space for choice. More so if one was born into it. Just as Nagaon inherited Dhing, unwillingly, unaffectionately, and left it so. There are places that no one talks about, no one but the people who inhabit it. Places unpleasant like a bad memory that people prefer to lock up in a safe and lose the key to. This was one of those places. This was Dhing of Ibrahim's dreams - Dhing where stagnancy crept along the corrugated roofs, leaving corrosion, downwards into the pool of water; Dhing, where something heavy loomed over its people, something that lulled their lives into a pace too slow for the rest of the world. Why were there no colours on the walls? No colours anywhere except green, as even sunlight refused to pierce through the jilted canopy of the bamboos, Sals and Seguns. There were large swatches of sunlit fields, glowing golden with the warmth of the mustard crops. Nur's dismayed eyes found respite and she wondered whether they were a source of comfort for them too? Did it substitute for their lack of all the colours but green?

In those houses lived a barrage of people who would turn out to be her *Khuras, Bordetas* and *Pehis,* each trying to establish familiarity through food and smiles.

"Allah go, Is she your meyi?" an aunt inquired of Ibrahim. Her *tati saree* had lost much of the blue it had, hanging loose around her corpulent frame. Rings of ridges circled the eyes which, though recipient of thousands of images spread through decades of times passed did not lose the essence of life Nur was seldom accustomed to see.

Ibrahim nodded with a knowing smile.

She then went on to quiz Nur, *"Tui janos ami kun?"* Did she know who she was?

Nur gave an uncomfortable smile guilty of something she didn't know.

"Of course you don't. How will she know Ibrahim, if you don't bring her here enough? Remember, we must stay together. In times of difficulty, after all it is one's own people that will help you", chastised the aunt. Nur watched the stranger with eager eyes as she continued scolding her father, finding a part of his life that was absent from hers. She saw history in its most tangible manifestation, and although her father had greyed well into age, there sitting in that plastic chair too small for his comfort she saw the vestiges of the lively young boy he was once, a boy capable of emotions other than anger.

"Why didn't you take your mother along with you?" Nur found herself being asked the question she knew all too enough, the answer to which was ingrained in the roots of her tongue.

"Her students had their exams, she had to stay with them otherwise she would have definitely come."

"Promise me Ibrahim, you'd bring her the next time?" she said and immediately laughed at her optimism. "If you ever come again, that is." She added. As she sensed the end of the conversation, she went on to make chai for all her guests, as they refused to have *bhat.*

Another stranger entered the room, whom her father introduced as her Bordeuta, his distant elder brother. In their familiar talks Nur sensed a bond that didn't accede to the constraints of time and space. They smoothly crossed that span, conversations easily building through them. All this

while Nur was settled nearby on a comfortable chair, wisps of vapour rising from the *laal saah* nestled comfortably in her hand, through which she could see her father talk animatedly about histories she never knew existed. It was in their shared past that Nur found solace, an access to the past she was only a silent spectator to.

"The river's already eaten up Mujakir's home. It's only a matter of time before the market falls prey to its insatiable hunger. Only Allah knows what tragedy is waiting to befall them, so many livelihoods lost!" Uncle sighed, not with any exaggerated pretence of a sudden calamity. This was a lived reality, this was the reason they moved here in the first place he said.

"I am not building up this house any fancier than it is now. I know the river won't pardon us too... only a matter of time... only a matter of time. Ever since the Dhola-Sadiya changed the currents of the river, Luit has ravaged our home. But who cares about the shadows when one tramples over them to progress? Greatness overshadows the little, the weak, the forgotten. How do we, the perennial outsiders even feature in their imagination for development? Development was never meant for all."

The rows of corrugated iron rods, placed inside the window failed to keep the cold outside. It wasn't cold, winter seldom visited from the hills down in the valley now. Just water. Bordeuta filled up the ripples of dried cement on the walls with his words. And in them she saw. It wasn't stagnancy but resilience that Nur saw in the houses, bereft of colour because Luit didn't allow any. Any trace of excess, any celebration of magnanimity was severely punished. Nothing but the green and brown survived.

That evening as the dying embers of daylight fell upon the ancient watery grave, Nur's father pointed out the absent piece of land which was once his home. It was the center of every activity, he said. "We would all sit around a gigantic brass container where our mother would squash an entire bunch of *Bhimkols,* mash them with rice and milk. We ate like monsters, *raikokh'or nisina khaisilu",* he smiled. She wondered how it felt like. To see the whips of Luit carry away his land, piece by piece, until nothing but the air above it remained. As her uncle said, no traces of celebration were exempted. And her father then knew how to celebrate.

■■■

Gandhi's Ideas on the Need of Value Based Education : An Ethical Reflection

- Dr. Satyendra Srivastava
Department of Philosophy

"You consider a man as educated if only he can pass some examinations and deliver good lectures. The education which does not help the common mass of people to equip themselves for the struggle for life, which does not bring out strength of character, a spirit of philanthropy, and the courage of a lion – is it worth the name? Real education is that which enables one to stand on one's own legs."

Vivekananda

"An education which does not teach us to discriminate between good and bad, to assimilate the one and eschew the other, is a misnomer."

Gandhi

Mahatma Gandhi is one of the most prominent figures of modern times not only for India but for the whole world. His simple but elegant thoughts affect not only brains but hearts also. His illuminating ideas on various issues have inspired and still inspiring millions of people across the world. This paper throws light upon his ideas of value based education and further emphasizes its need in the present education system. Although Gandhi did not devote any specific separate book on education but he contributed valuable thoughts based on his own experience on the subject which are relevant and viable today. His aphorism 'my life

is my message' depicts the real essence of his philosophical teachings. He was the one who himself experienced in his own life all the truths about which he wrote or spoke. This is equally applicable when he addresses the significance of value based education.

Value is an omnibus term. It includes so many ethical notions like honesty, pure-conscience, self-respect, self-reliance, respect for women and poor people, love and compassion to all, duty towards the country, society and family, self-less service, social commitment, etc. A value based education should incorporate these notions and should harmonize all aspects of the learner or students. In the absence of these notions education will become a collection of information, a dry precept or dogma and students would be like a robot. So at the outset, it is necessary to mention Gandhi's view on education. He writes-

"I hold that true education of the intellect can only come through a proper exercise and training of the bodily organs .....an intelligent use of the bodily organs in a child provides the best and quickest way of developing his intellect. But unless the development of the mind and body goes hand in hand with a corresponding awakening of the soul, the former alone would prove to be a poor lop-sided affair. By spiritual training I mean education of the heart. A proper and all round development of the mind, therefore, can take place only when it proceeds pari passu with the education of the physical and spiritual facilities of the child. They constitute an indivisible whole." Harijan, 08-05-1937

By emphasizing the holistic development of the individual he further says-

"By education I mean an all-round drawing out of the best in child and man - body, mind and spirit. Literacy is not the end of education nor even the beginning. It is only one of the means whereby man and woman can be educated. Literacy in itself is no education. I would therefore begin the child's education by teaching it a useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training. I hold that the highest development of the mind and the soul is possible under such a system of education." Harijan, 31-7-1937

As an iconoclast in educational reform, Gandhi delineates the fundamental objective of education in a comprehensive way. He wants education to be dynamic, living and above all humanistic rather than an inert and self-centred phenomena. He is well aware about the limits of too much bookish knowledge. As these bookish knowledge and flood of information have converted human beings into a knowledge-machines and diminished their creative and humanistic spirit. He warns-

"All your scholarship, all your study of Shakespeare and Wordsworth would be vain if at the same time you do not build your character, and attain mastery over your thoughts and actions. When you have attained self-mastery and learnt to control your passions you will not utter notes of the despair." 1 Young India 19-09-1929

For Gandhi character is very crucial in the process of being educated. That's why when he enumerates seven social sins, he characterizes knowledge without character is also as a sin2. In the absence of character knowledge may be a dangerous instrument and can be used to exploit or ignore the weaker section of the society. In the absence of good value system an educated person treats himself as an elite being and may have a contemptuous attitude towards poor and illiterate people. As Gandhi laments-

"It is a sad thing that our school boys look upon manual labour with disfavour, if not contempt." Young India, 01-09-1921

In the similar vein, Vivekananda wants to fix responsibility for educated persons that they should work for the welfare of uneducated and poor people, otherwise the main purpose of education will be defeated. He emphasizes this responsibility very strongly in the following words.-

"I call him a traitor who, having been educated, nursed in luxury by the heart's blood of the downtrodden millions of toiling poor, never even takes a thought for them." (Vivekananda, Swami, The Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. 8, 1964 : 329-30, Calcutta)

To achieve this ideal of education Gandhi underlines the role of parents and teachers, because the actions and behaviours of these people leave a direct impact on young minds. We generally say that parents are the first teacher of a student and teachers are the second parents. When a child is infant, parents' day to day behaviour shape the nature of a child. Therefore, parents should be very careful in this matter. As Gandhi opines-

"The education of children is primarily a duty to be discharged by the parents. Therefore, the creation of a vital educational atmosphere is more important than the foundation of innumerable schools. When once this atmosphere has been established on a firm footing, the schools will come in due course."

It is the family from where a child learns the first lesson of his life. There are so many examples where a child did not get the opportunity to acquire formal education, but had contributed very much to the welfare of humanity because of the value-system of their families. The reverse is also a sad reality, where highly intellectual people have deteriorated the progress of society in the absence of value system. So, according to Gandhi -

"The real property that a parent can transmit to all equally is his or her character and educational facilities..... Parents should seek to make their sons and daughters self-reliant, well-able to earn an honest livelihood by the sweat of the brow." Young India, 29-10-1931

Gandhi's emphasis on family in the process of acquiring knowledge reminds us the famous dictum of his contemporary American-Spanish philosopher George Santayana (1863-1952). According to Santayana – 'A child educated only at school is an uneducated child' 3.

The role of a teacher is also important for imparting values in students. It is the teacher who teaches students about some values apart from academic knowledge in a decent and dignified way. The workmanship of a teacher is more important than to just divulging bookish knowledge. For this his character is equally or more important than to his intellectual acumen. He underscores the importance of teacher in the following way-

"My idea was never to entrust children to commonplace teachers. Their literary qualification was not so essential as their moral fibre."

One can question that why we have to consider the moral aspect of a teacher as he is not a preacher but an employer to perform some assigned duties. In this context there may be various arguments and counter arguments. But one explanation, which was given by Vivekananda is worth to mention here. In an interview published in Madras Times in February 1897, Vivekananda argued that a value based education requires a teacher of great personal integrity. He spoke-

"My idea of education is personal contact with the teacher.....Without the personal life of a teacher, there would be no education. Take your Universities. What have they done during the fifty years of their existence? They have not produced one original man. They are merely an examining body. The idea of the sacrifice for common weal is not yet developed."4 (CWSV, 5 : 224)

As a visionary thinker, Gandhi envisages the role of teachers in a wider perspective. The role of teachers is not confined just to class teachings and completing the syllabus rather to shape the life of students in holistic way. The greatest job of a teacher is to prepare the next generation to face the problems of the world with courage 5 and confidence. As the real examination of a student's life starts when she leaves the college and/or university and enters into the practical world. According to Gandhi -

"It is possible for a teacher situated miles away to affect the spirit of the pupils by his way of living. It would be idle for me, if I were a liar, to teach boys to tell the truth. A cowardly teacher would never succeed in making his boys valiant, and a stranger to self-restraint could never teach his pupils the value of self-restraints."

To accentuate the role of teachers, Gandhi

further says–'I did not find it at all necessary to load the boys with quantities of books. I have always felt that the true textbook for the pupil is his teacher' 6. Echoing the spirit of Gandhian thought, former President, A P J Kalam says that when children are growing up, say till the age of fifteen, the best role model they can think of would be their father, mother and their schoolteacher. They are the people who can impart the best guidance during this period. In this way teachers and parents have a big responsibility.

About the significance of education we have to understand that it is not one dimensional phenomenon limited to human intellect, neither it should be confined to the up-liftment of few people, but it must be holistic and should have concern for the welfare of all, specially of the poor. It should not be a dry precept loaded with facts, but it must be full of liveliness. Of course, intellect, rationality, jobs are essential aspects of education, therefore these are important but these aspects should not be developed and nurtured at the cost of humanistic and ethical values. Humanity is more important than rationality. It is the duty of intellectuals to serve the suffering humanity rather than just fighting for their own personal interests. In a civilised society duties and rights should co-exist without suppressing each other. History has witnessed that those who had set a paradigm of progress at national and international levels were not intellectually genius but average people with high integrity. Famous philanthropist and businessman Warren Buffett (1930-) rightly says –

"Look for three things in a person- intelligence, energy and integrity. If they do not have the last one, don't even bother with the first two." 7

It is a well-known fact that an educated, but valueless person is more dangerous than an illiterate person whose heart is pure. In our school days we were told that a hungry and poor person would steal a few kilograms of food grains from a deserted freight train but a highly educated person devoid of values will rob the entire freight train. It is clear that only value based education can play a vital role in curing these types of evils and preventing corruptions. It can also play a very crucial role in shaping the future of humanity. For Gandhi 'Real education consists in drawing the best out of yourself. What better book can there be than the book of humanity?' 8 (Harijan, 30-03-1934). We all know that the crisis of present society is not the lack of education, but the lack of value based education. In value based education we give equal importance to ethical and emotional aspects of life as well as rational. In other words, purity of heart and focus on moral values are equally important as the sharpness of mind or brain. Otherwise there will be a complete chaos in the social fabric. As Martin Luther King Jr. observes -

"The function of education, therefore, is to teach one to think intensively and to think critically. But education which stops with efficiency may prove the greatest menace to society. The most dangerous criminal may be the man gifted with reason, but with no morals." 9

Thus, true education means an all-round development of human life like – physical, intellectual, moral and spiritual. An ideal education system can not discard any of these aspects. A fine education system must have a fine balance and harmony among mind, body, and soul. Actually the problem of present educational institutions is that they are producing a large number of high earning software engineers, bureaucrats, doctors, professors, chartered accountants, company secretaries, lawyers, sports persons, media reporters etc. with high intelligence but most of them are living in tremendous mental pressures because of unending greed and egoistic and materialistic life styles. They are good in their professional skills because of their talent and education, but are they good human beings? This is the crucial question that our academic institutions, policy makers and family members have to address. Package based education system has marred their moral duty towards family, society and the nation as well as their inner conscience.10 It is because of these attitudes, their

personal lives have been scattered and their mental peace have been severely damaged. They have turned themselves as machines devoid of feelings and emotions 11. Of course, they are more 'intelligent' and 'confident' than their forefathers, but the problem is that their morals are very low in spite of very high talent and salary. We must not forget that financial earnings can no way compensate their ethical depreciation. In the present era of consumerism when people segregate ethics from economics then Gandhi exhorts –

"I must confess that I do not draw a sharp or any distinction between economics and ethics. Economics that hurt the moral well-being of an individual or a nation are immoral and, therefore, sinful." Young India, 13-10-1921

Through his reflective mind, Gandhi visualised problems of Indian education system a long time back. Financial stability is essential for the overall well-being of the individual but this should not be the sole purpose of education. Therefore value emphasis is the foundation of his teachings as against to the package based career, which occupies a central place in today's education system.

One of the most important aspect of Gandhi's ideas of value based education is that he emphasizes the need of practice of those values and principles which we study so that we can internalize them. We usually quote the aphorism that 'knowledge is power' but in reality, knowledge is only 'potential power'. It becomes actual power only when we practice it in our day to day life and make it an essential part of our character. History has witnessed that mere bookish knowledge hardly left any impact on the society and humanity. It is the practice of those values in real life, which makes the difference. As he clearly states-

"Real education begins after a child has left school. One who has appreciated the value of studies is a student all his life. His knowledge must increase from day to day while he is discharging his duty in a conscientious manner."12

It will not be out of place to mention some Western thinkers who also highlighted the need of value based education. In his famous lecture to Harvard University students, the American poet R W Emerson (1803-1882) said that 'character is higher than intellect'13 which left an everlasting impact on young minds of academic institutions. It underscores the primacy of moral values to intellectual values. It re-emphasizes the urgency of human virtues which have been underscored by Greek Philosopher Aristotle (384-322 BC) in his famous book 'Nicomachean Ethics' 14 but which were unintentionally ignored by two major ethical theories of that time namely teleological (Bentham and J S Mill) and deontological (Immanuel Kant). In this book Aristotle talks about moral (courage, generosity, justice, friendship) and intellectual virtues (wisdom, intuition, art) which are equally important for an overall development of human life. In his autobiography Benjamin Franklin (1706-1790) talks about the practice of thirteen virtues (Temperance, sincerity, justice, chastity, humility etc.), most of them are moral, and not intellectual (2004 : 67-71). The letter which was written by Abraham Lincoln (1809-65) to the teacher of his son is like a manifesto of value based education. Utterances like- 'Teach him that for every enemy there is a friend. It will take time, I know a long time, but teach, if you can, that a dollar earned is of more value than five found. Teach him, it is far more honourable to fail than to cheat.' urge the necessity of value based education. If we successfully actualize the philosophy of this letter in our life most of problems will be sorted out.

In conclusion, we can say that the problem of our present education system is that it has overemphasized the development of intellect even at the cost of general well-being of humanity. It could not visualise that humanity is more valuable than rationality. Being illiterate may be a problem for a civilised society but being immoral is a catastrophe. Great scientist A P J Kalam has also showed concern about this paradox. The knowledge of modern Science and Technology has made human beings less sensitive. The fascinating consumerism has turned human beings into mere

commodities. So, it compelled Kalam to say that we have guided missiles, but misguided human beings. Job may be one aspect of education, but it can not and should not be the only goal of education. Through his erudite vision Gandhi has envisaged this problem around 125 years back, so by his writings and teachings he tried to check this dangerous trend. He strongly recommended all round development of human beings with special emphasis on character. As man is neither mere intellect, nor the gross animal body, nor the heart nor soul alone. A proper and harmonious combination of all the three is required for the making of whole man and constitutes the true economics of education. Harijan, 08-05-1937. In connection to this he expresses his view as a schoolmaster -

"I had always given the first place to the culture of the heart or the building of character, and as I felt confident that MORAL training could be given to all alike, no matter how different their ages and their upbringing.....I regarded character building as the proper foundation for their education, and if the foundation was firmly laid, I was sure that the children could learn all the other things themselves or with the assistance of friends." 15

The onus is now upon all of us to prepare this foundation, if we sincerely wish to actualize his vision of value based education,

■■■

ENDNOTES

1. It is very pertinent to mention here the view of Swami Vivekananda, who is also an important pioneer for the inculcation of values in education. In an article 'The Future of India' he writes-

   "Education is not the amount of information that is put into your brain and runs riot there, undigested all your life. We must have life-building, man-making, character-making assimilation of ideas. If you have assimilated five ideas and made them your life and character, you have more education than any man who has got by heart a whole library. यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य | - 'the ass carrying its load of sandalwood knows only the weight and not the value of the sandalwood.' If education is identical with information, the libraries are the greatest sages in the world and encyclopaedias are the Rishis." Vivekananda , Swami, The Complete Works of Swami Vivekananda , Vol. 3, p.302, Advaita Ashrama, Kolkata, 2015.

2. According to Gandhi, there are seven social sins, namely – 1. Politics without Principles 2. Wealth without Work 3. Pleasure without Conscience 4. Knowledge without character 5. Commerce without Morality 6. Science without Humanity 7. Worship without Sacrifice , Young India, 22nd October 1925.

3. https://www.brainyquote.com/quotes/george_santayana_107603. Accessed on 7th Feb. 2019.

4. In 1897 there were only four major Universities namely Calcutta, Bombay, Madras and Allahabad at that time in India. It was Vivekananda's ingenuity that he has understood the problem of our education system even in a short span of time.

5. When we think about moral values and human virtues, then we find numerous of them. But majority of thinkers consider courage as the highest virtue because without courage one can not practice other virtues consistently.

6. One clarification is required here. As a visionary thinker Gandhi was well awared about the potentials of common people. So he does not believe that without teacher no one can be a knowledgeable person. As he writes- "The superstition that no education is possible without a teacher is an obstacle in the path of

educational progress. A man's real teacher is himself. And now-a-days there is ample apparatus available for self-education.....Experience is the biggest of all schools. Quite a number of crafts can not be learnt at school but only in the workshop. Knowledge of these acquired at school is often only parrot like. .....What adults need is not so much a school as a thirst for knowledge, diligence and self-confidence."

7. plymouthministorage.com. Accessed on 8th February 2019.

8. Gandhi was very much concerned for the miseries of his countrymen. And, therefore he observes education as a means to ease these miseries rather than personal gratification. As he says "In my opinion, intelligent labour is for the time being the only primary and adult education in this land of starving millions....Literary education should follow the education of the hand – the one gift that visibly distinguishes man from beast. It is a superstition to think that the fullest development of man is impossible without a knowledge of the art of reading and writing. That knowledge undoubtedly adds grace to life, but it is in no way indispensable for man's moral, physical or material growth." Harijan, 08-03-1935

   https://www.drmartinlutherkingjr.com/thepurposeofeducation.htm

9. , Accessed on 14th Feb. 2019. A similar view has been propounded by the famous educationist and philosopher Dr. S. Radhakrishnan as he said- "The aim of education is not the acquisition of information, although important or acquisition of technical skills, though essential in modern society, but the development of that bent of mind, that attitude of reason, that spirit of democracy which will make us responsible citizens."

10. In present education system, when every qualification is being evaluated in terms of placement and package, then the words of Abraham Lincoln, that he wrote to school teacher of his son in a letter – "Teach him to sell his brawn and brain to the highest bidder but never to put a price tag on his heart and soul." compels us to ponder about the irony of our package oriented qualifications.

11. Herbert Marcuse, a trenchant critic of consumerism writes that 'The so-called consumer economy and the politics of corporate capitalism have created a second nature of man which ties him libidinally and aggressively to the commodity form. The need for possessing, consuming, handling, and constantly renewing the gadgets, devices, instruments, engines, offered to and imposed upon the people, for using these wares even at the danger of one's own destruction, has become a "biological" need.'

12. For any new idea practice is very crucial. Mere theoretical interpretation of anything is not enough. It is the practice which signifies the real value of an idea. This thesis was endorsed by Vivekananda also. As he writes at the first step of 'Raj –Yoga'-

"Practice is absolutely necessary. You may sit down and listen to me by the hour every day, but if you do not practise, you will not get one step further. It all depends on practice. We never understand these things until we experience them. We will have to see and feel them for ourselves. Simply listening to explanations and theories will not do."

13. Cf. Gordon Marino's edited book Ethics, chapter-17 'The Disparity between Intellect and Character' of Robert Coles p. 350.

14. In this book Aristotle talked about two types of virtues like moral (courage, generosity and justice) and intellectual (knowledge, wisdom and insight). According to him, for a holistic development of human life, both are equally important, pp. 31-144.

15. Vivekananda, in one of his famous interview delivered on 24th January 1898, stated his ideal notion of education in following words- "We want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded, and by which one can stand on one's own feet."

■■■

History: A Vernacular?

- Varun Bhagat
History Hons IInd Year

Whenever something related to the discipline of history comes into discussion, it isn't long before the normative description of the subject as a subject of rote learning, reserved for those students who cannot do science, pops up. Is history just confined to past? Did the seemingly long sheets we were all compelled to write distance us, somehow, from the fascinations that we were always interested in?

Many tend to consciously degrade the importance of history, without realizing that communication between individuals will, beyond a point, always rely on history, whether it is related to politics, happenings around the world, or simply the last movie they have seen.

Be it science, where students, while learning the formulas given by scientists years ago, tend to travel back in time and visualize the execution of experiments with the limited availability of technology. Isn't that history? Or in case of commerce, where students look back at the various policies introduced by the government, or famines that destroyed crops in a particular region and the consequent action taken by the government. Doesn't that qualify as history?

So wouldn't it be right to say that history is necessary for sciences and commerce, and without it, these disciplines would be nothing more than a hollow accumulation of ideas and practices?

Some tend to re-experience the lost admiration towards history when they visit a monument or are simply in awe at the sight of an antique object. But again, is history just centered on archaeological sites and antique items?

Doesn't history, besides giving a link between the past and present, also serve to give some possibilities about what future holds for us, given the fact that history always repeats itself?

On a serious note, it is through history that one connects to their roots, and for anyone to be successful in life, being closer to their foundation is extremely important.

If given the opportunity to define the discipline of history, it will be on the lines of a subject that involves the study of humanity, by humanity and for humanity. History is more than the elaborate facts and figures, and the mind-boggling dates it includes. It's a study of processes that shaped our ancestors and thus, consequently, have an impact on where we are today. The cultures we follow, the traditions we respect and the norms we obey, all have evolved through these processes. This, in my opinion, makes it even more necessary for people to know and comprehend, in a greater sense, the stages through which one's nation and community progressed, in order to become more sensitive and aware of something that resides in our core.

Obeying the word limit, I would end this article with a quote for you to ponder upon.

Yesterday is today's history and

Every moment of today, is tomorrow's.

■■■

Those Days are Gone

- Vikas Prajapati
Life Sciences Ist Year

I know those days are gone when I could laugh –
without any hesitation, when I could cry and shout
loudly whenever I felt weak or just upset.
But still, I ask my life with some hope,
Can I again be a child?
And it replies,
No, those days are gone!

I miss those moments,
when I used to fall onto the ground and
aggressively blame the lifeless stone,
I miss how I stood up and counted the ants who had died.
So again, deliberately,
I ask my life,
Can I be a child again? and it again replies,
No, those days are gone!

Now, how can I forget those paper boats made out
of notebook pages, always enthusiastic for their most
dangerous voyages of all time and hoping they
would never sink!
But this time,
I didn't ask my life for my childhood,
I know those days are gone...

■■■

Images from Childhood

- Smriti Verma
English Hons IIIrd Year

The memory quickly fades into origin:
days of sunlit, ashen mornings, and the golden –

bouncing off the copperware, the field of green,
chiseling away the edges, the teeth-like irregularities,

and softening June with the colour of setting suns.
Surrendering to the shape of birds at twilight,

and us – little figurines, hands a mess of bones,
Bodies tumbling towards another fate.

This was back when we couldn't separate
the glow from the sun, the fire from the spectacle–

younger versions of the same self,
stuck in a heaven of their own making.

And the solitary image, stuck like a riddle in my head:
you, running towards and running away,

And your little hand – a fist around mine,
Tight and tangible and dreamy,

like an aftermath of some great frenzy.
And the house, still surviving, breathing with wind,

existing not as some painting or a photograph,
but a structure, a monument, that lived on

even when the sunsets, and the birds and us-
all had stood up and left.

■■■

Starfall

- Areeb Ahmad
English Hons IInd Year

I witnessed the death of a star tonight
the sky was defaced by a scar tonight

fiery fusillade rains down from above
heavenly desires make or mar tonight

restive restless mind runs helter-skelter
contentment seems so very far tonight

time is the supreme scourge of existence
conjuring pasts at this late hour tonight

sanctified stellar slivers light the way
let me walk the weekly bazaar tonight

the mirror shatters me into fragments
my myriad inner selves at war tonight

they ask, areeb, why are you despairing
I am entrapped in this bell jar tonight

■■■

Timeless Visions

- Anshuman Yadav
English Hons IIIrd Year

day before yesterday him dancing
bathed in the colours of lights
getting tired then Weakness a shrine in the moonlight
yesterday him tumbling down
no one but him nothing but his face
the seamless helpless adjustment to enervation
where he fell a man
scraping the earth with his index finger
retreats of blood converging
today now here
a listless dove
wrapped in white threads warped
the shaft of time split
in impermanence and futility

■■■

Five tips to a healthy heart

- Areeb Ahmad
English Hons IInd Year

First,

let the sun dance across your face
and the wind play with your hair
sprawled snug on the green grass
whiling away the time in boredom
as spring arrives laden with gifts

Second,

jump under the blankets and read
lonely nights and dark days away
come alive within the pressed pages
infinite journeys begin with a step
walking in the shoes of fabrication

Third,

believe in the phenomenon of love
which makes the world go around
shared glaces and words of grace
seated in the heart, conquers soul
burning bring against the long night

Fourth,

write till your fingers bleed black
and life blossoms, alpha to omega
words sprout like flowers on paper
trailing behind the scent of creation
as mind exerts control over matter

Fifth,

let sweet sleep share her embrace
as dusty dreams slowly come alive
lost stories take brand new shapes
desire comes out of the hiding place
under starry skies and gibbous moon

■■■

Lovers

- Anshuman Yadav
English Hons IIIrd Year

After 'Sairat'
Against the racking fire,
Two lovers escaping the shaitan,
The sky's blaring cawing
Urging them to keep going,
The refuge, right here,
Yes, thriving, finally.
Escaped and happy.
But, there, here, they are,
Not in the moment,
In what is to come,
Hands entwined,
Two lovers draped in crimson threads.

■■■

White Hair Wisdom

- Soumya Vats
English Hons IInd Year

Nani's nostalgia is Aamchur-flavoured
lingers on in lip-smacking reminiscence
her bony fingers stir the pot of half-cooked
glimpses
to serve her Chandni Chowk childhood
each thali a lesson brewed by her years.

Nani chewed away harsh truths
like her Amma's betel leaves
red-stained lips hid dreams
pressure cooker noise drowned rebellion.

Nani never questioned rules
devoured them like suspiciously fried jalebis
traversed Dariba's streets
but got home before sundown.

Nani blended spices
her mortar and pestle crafting
a balance she chose to season
her first marital curry with.
The in-laws complained the gravy
was too spicy for their delicate stomachs.
Nani needed to be bland.

Nani still ruled the kitchen
her quarrels the shrieks of falling plates
she shaped the flour of family
her chapatis swelling with pride
marveling at their homely creator.

Nani says the onions are too strong today
her white hair make me cling to her words
they drip old age wisdom
and I overfill my glass to swallow advice.

Nani tells me to read to her my poems
she says I create flavorful stanzas
coat them with the batter of my voice
and serve it with a chutney of inflections.
She says my experiences enrich hers
for her freedom was reclaimed
but within these aromatic four walls.
She wants me to have not even one.

I write her life out in ink
like Instant Ramen
that aspires to be a legacy home-cooked meal
I sprinkle some garam masala

in my Maggi
and wonder when my head, too, will be seasoned
white
with salt
of wisdom.

■■■

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

Krishna Chaitanya
B.A. (Prog) I Year

Alisha Fatima
B.A. (H) Economics II Year

Krishna Chaitanya
B.A. (Prog) I Year

HANSRAJ COLLEGE
University of Delhi

Delhi University Gold Medalists 2018-19

Singmichon Keishing
M.Sc. (Final) Anthropology

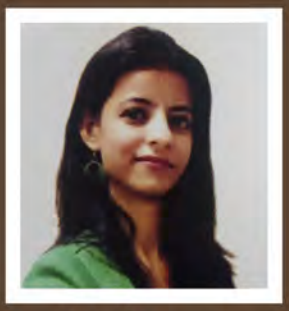

Anjali Duggal
M.Sc. (Final) Chemistry

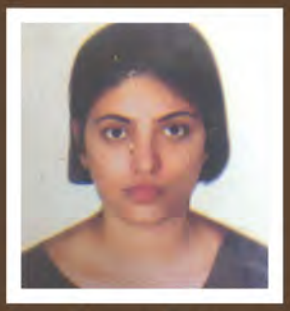

Nupur Pant
M.Sc. (Final) Geology

Shubhangi Goyal
M.Sc. (Final) Operational Research

Mohd. Javed
M.A. (Final) Hindi

Rajeev Ranjan Yadav
B.A. (H) Sanskrit III Yr.

Sagarika Rao
B.Sc. (H) Anthropology III Yr.

Vipul Kumar
B.Sc. (H) Comp. Sc. III Yr.

Prayukta Mohanty
B.Sc. (H) Geology III Yr.

Surbhi
M.Sc. (Final) Mathematics

HANSRAJ COLLEGE

University of Delhi

Tel.: 011-27667458, 27667747 • Fax: 011-27666338

Email: principal_hrc@yahoo.com • www.hansrajcollege.ac.in